CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

विषय	लेखक	पृष्ठसंख्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गीताप्रेसकी नयी पुस्तकें

(१) तत्त्व-चिन्तामणि—(लेखक-श्रीजयदयालजी गोयन्दका) पृष्ठ-संख्या ४००, मोटा कागज, बढ़िया छपाई, तिरंगे चित्रोंसहित। इसमें गोयन्दकाजीके भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार आदि पारमार्थिक विषयोंपर लिखे हुए २९ लेखोंका अपूर्व संग्रह है। इस एक ही पुस्तकके अध्ययनसे बहुतसे आध्यात्मिक गहन तत्त्व बड़ी ही सरलतासे समझे जा सकते हैं। प्रत्येक कल्याण-कामीको इसका अध्ययन करना चाहिये। मूल्य ॥।-) सजिल्द १) डाक-महसूल अलग।

(२) गीता-डायरी सन् १९३० की छप गयी और धड़ाधड़ मांग भी आ रही है। अबकी कई आवश्यक विषय दिये गये हैं। मूल्य ।) सजिल्द ।-) डाक-महसूल अलग।

(डायरी खरीदनेमें कल्याणके ग्राहकोंको विशेष सुभीता)

बिना जिल्दकी सात प्रतियां और सजिल्द छः प्रतियां एक साथ लेनेवाले 'कल्याण'के ग्राहकोंसे डाकखर्च नहीं लिया जायगा। सात अजिल्द प्रतियोंके दाम डाक-महसूल-समेत २।-) तथा ६ सजिल्दके २≡) होते हैं, इसके बदलेमें अजिल्द सात १॥।=) में तथा सजिल्द छः २) में दी जायंगी।

(३) मानव-धर्म—इसमें मनुमहाराजकृत मनुष्यके प्रसिद्ध दश धर्मोंकी सुन्दर विस्तृत व्याख्या है। यह पुस्तक कल्याणके सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारद्वारा लिखित है। मनुष्यमात्रको धर्मका सच्चा मार्ग बतलानेवाली लगभग ११० पृष्ठकी पुस्तकका . मूल्य केवल ≡) तीन आने, डाक-महसूल अलग।

(४) भजन-संग्रह–(प्रथम भाग) भक्तराज गोस्वामी तुलसीदासजी, सूरदासजी, कबीरजी और मीराबाईजी-रचित गाने योग्य सुन्दर चुने हुए भजनोंका अमूल्य संग्रह, पाकेट साइज पृष्ठसंख्या २००, मूल्य केवल ≠) दो आना, डाक-महसूल अलग।

पुस्तक-विक्रेताओंको खास सूचना

ऊपर लिखित प्रथम पुस्तक 'तत्त्व-चिन्तामणि' का प्रचार हम विशेषरूपसे करना चाहते हैं। इसलिये पुस्तक-विक्रेताओंको सिर्फ उस पुस्तकपर ३३) प्रति १००) कमीशन देना निश्चित किया गया है। पुस्तक-विक्रेताओंको इस पुस्तकके अधिक प्रचारमें धन और धर्म दोनों ही मिलते हैं। आशा है खूब चेष्टा करके यह पुस्तक बेची जायगी।

व्यवस्थापक

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रेमयोग, विनयपत्रिका, और गुजराती गीता ये पुस्तकें अभी प्रकाशित नहीं हुई हैं। मंगानेवाले आर्डर नोंधवा सकते हैं। तैयार होनेपर भेजी जायंगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

शीघ्र आवश्यकता

'कल्याण' के सम्पादन-विभागमें एक या अधिक ऐसे सुयोग्य सज्जनोंकी शीघ्र आवश्यकता है जो ईश्वर और ईश्वरीय धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले होनेके साथ ही सनातन-धर्मी हों, पर किसी भी धर्मसे घृणा द्वेष न करते हों। परमात्माके निराकार साकार दोनों स्वरूपोंमें विश्वास रखते हों, कल्याण-परिवारमें एक सदस्यकी भाँति रहना पसन्द करें, कानून-कायदोंकी परवा न रख हिलमिलकर प्रेमसे कल्याणके प्रचारार्थ काम करना चाहें; संस्कृत, हिन्दी, अंगरेजी अच्छी तरह जानते हों, विशेषकर आध्यात्मिक विषयके हिन्दी लेखोंका अंगरेजीमें और अंगरेजीका हिन्दीमें शीघ्र सुन्दर अनुवाद कर सकें। इसके सिवा बंगला, उर्दू, मराठी, गुजरातीमेंसे कोई-सी भाषा जानते हों तो और भी अच्छी बात है। सम्पादकके पास रहकर या उनकी अनुपस्थितिमें उनके परामर्शानुसार सम्पादन-कार्य करना होगा, एवं सम्पादकीय विभागके पत्रव्यवहार भी करने पड़ेंगे। वेतन योग्यतानुसार, सन्तोषप्रद दिया जायगा। शीघ्र लिखा पढ़ी करें।

मैनेजर, 'कल्याण'
गोरखपुर

कृतज्ञता-प्रकाश और निवेदन

बड़े ही हर्ष और सन्तोषका विषय है कि 'कल्याण'के अनेक प्रेमी पाठक पाठिकागण विना किसी आर्थिक या मान बड़ाईके स्वार्थके कल्याणके ग्राहक बढ़ा रहे हैं। कई सज्जनों-ने बीस बीस तीस तीस ग्राहक बनाये हैं। दो दो चार चार ग्राहक बनानेवाले सज्जन तो अनेक हैं। कई संसार-त्यागी संन्यासी साधु महात्मा कल्याणके प्रचारमें बड़ी भारी सहायता कर रहे हैं। हम इन सभी प्रेमी सज्जनोंके हृदयसे कृतज्ञ हैं। कल्याणपर इन सज्जनोंका बड़ा उपकार है। कल्याण, किसी एककी सम्पत्ति नहीं है, यह तो प्रेमीमात्रकी वस्तु है। अतएव हम लोग धन्यवाद भी क्या दें। जो इसके ग्राहक बढ़ाकर प्रचारका कार्य कर रहे हैं, वे अपने घरका ही काम कर रहे हैं।

हमारा पुनः सविनय निवेदन है कि प्रेमी सज्जनगण दिनों दिन दूने उत्साहसे 'कल्याण' के ग्राहक बढ़ाते रहें। जिन सज्जनोंने अभी कम चेष्टा की है वे भी प्रयत्न करें। कमसे कम तीन तीन ग्राहक तो प्रत्येक पाठक अवश्य ही बनानेकी कृपा करें।

सम्पादक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

श्रीगीता-ज्ञान-यज्ञ

आगामी कुंभके अवसरपर प्रयागमें होनेवाले गीता-ज्ञान-यज्ञकी सूचना 'कल्याण' के पाठकोंको दी जा चुकी है। कृपया गतांककी सूचनाके अनुसार गीता-प्रदर्शनीके लिये पुस्तकें और चित्रादि भेजनेका प्रयत्न कल्याणके प्रेमी पाठक अवश्य करें। ज्ञानयज्ञमें बहुतसे गीता-मर्मज्ञ विद्वान् और सन्तोंके पधारनेकी आशा है। पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 'कल्याण' के सुपरिचित लेखक श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पधारनेकी भी बहुत सम्भावना है।

—राघवदास

गीता-जयन्ती मनाइये

कल्याणके पाठकोंको श्रीगीताजीका महत्त्व बतलाना नहीं होगा। आगामी मार्गशीर्ष शुक्ला ११ से १३ तक गीता-जयन्ती स्थान स्थानमें मनायी जानी चाहिये। जयन्तीके अवसर-पर नीचे लिखे कार्य यथासम्भव करने कराने चाहिये।

(१) श्रीगीता-ग्रन्थकी पूजा।

(२) गीताके वक्ता और रचयिता भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् व्यासकी पूजा।

(३) यथासाध्य गीता-पारायण।

(४) गीता-प्रवचन।

(५) गीतापर सभाएं और व्याख्यान।

(६) गीताकी मौखिक परीक्षा और उत्तीर्ण पुरुषोंको पुरस्कार।

(७) गीतापर लेख और कविता पाठ।

(८) कीर्तनके साथ श्रीगीताजीकी सवारी निकालना।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
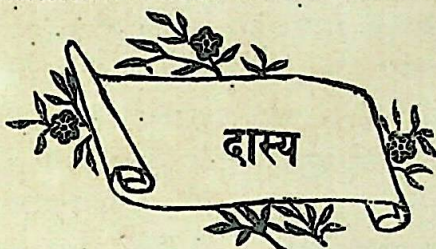
(लेखक—श्रीवियोगी-हरिजी)

दास्यरतिमें प्रेमीके मनमें ममताका सञ्चार होता है। 'प्रभु मेरे हैं, और मैं प्रभुका हूं' यह आनन्दमयी ममता प्रेमीके हृदय-सागरको सदा विलोड़ित करती रहती है। सेवकमें ही नहीं, यह ममत्व सेव्यमें भी होता है। जैसे भक्त भगवान्‌की सेवा करता है, वैसे भगवान् भी अपने हृदय-दुलारे प्रिय भक्तकी सेवा करनेमें आनन्दानुभव करते हैं। अर्जुनसे भगवान् कृष्णने कहा है—

हम भक्तनके, भक्त हमारे।
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरत न टारे॥

तथैव—

साधवो हृदयं मह्यं, साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

महान् गहन है सेवकका धर्म। योगियोंको भी अगम्य है यह। सेवा और स्वार्थमें स्वभाव-सिद्ध वैर है। स्वामीका स्वार्थ ही सेवकका स्वार्थ है। स्वामीके प्रति निःस्वार्थ भक्ति-भावना ही सच्ची सेवा है। 'प्रभु सदा मुझे अपनाये रहें'—यही सेवकका एकमात्र स्वार्थ है। स्वामीकी सेवा ही उसका सबसे बड़ा हित है। कितना ऊँचा आत्म-निवेदन है इस भावनामें!

सेवक हित साहिब-सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई॥
—तुलसी

इसके विरुद्ध—

जो सेवक साहिबहिं सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
—तुलसी

स्वामीके स्वार्थसे भिन्न उसका अपना कोई स्वार्थ है ही क्या? जब नृसिंह भगवान्‌ने भक्तवर प्रह्लादसे वर माँगनेको कहा, तब आप बोले—

नान्यथा तेऽखिलगुरो, घटेत करुणात्मनः।
यस्तु आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्॥
अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव॥
यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ!
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥

हे जगद्गुरो! तुम करुणारूप हो, तुम्हारा इस भांति अपने दासोंको विषयोंकी ओर प्रवृत्त करना असम्भव है। जो तुम्हारा दुर्लभ दर्शन पाकर तुमसे विषय-जन्य सुख माँगता है, वह सेवक नहीं, बनिया है। मैं जैसे तुम्हारा निष्काम सेवक हूं, वैसे तुम भी मेरे अभिसन्धि-शून्य स्वामी हो। अतः राजा और उसके सेवककी भांति हम लोगोंमें अभिसन्धिकी कोई आवश्यकता नहीं है। हे वरदानियोंमें श्रेष्ठ! यदि मुझे तुम मनोवाञ्छित वर देना ही चाहते हो, तो यही एक वर दो कि मेरे हृदयमें कभी विषय-वासनाओंका अंकुर न उगे।

सांसारिक अभिलाषाओंका अंकुर सच्चे भक्तके हृदयमें जम ही नहीं सकता, क्योंकि राग-द्वेषादि तभी तक जीवकी सद्वृत्तियोंको लूटते रहते हैं, घर तभी तक उसे जेलखाना है और मोह तभी तक उसके पैरकी बेड़ी है, जबतक, नाथ! वह तुम्हारा दास नहीं हो गया—

तावद्रागादयस्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोंऽघ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसका तुमसे स्वाभाविक प्रेम हो गया, जो तुमसे सिवा तुम्हारी कृपाके और कुछ नहीं चाहता, उसके हृदयमें भला रागादि लुटेरे अपना अड्डा जमायँगे ? उसका मनोमन्दिर तो, प्रभो ! तुम्हारा खास निवास-स्थान है—

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्हसन सहज सनेहु ।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो रावर निज गेहु ॥

—तुलसी

जहां राम हैं, वहां कामका क्या काम ? काम वहीं रहेगा, जहां राम न होंगे—

जहां राम तहं काम नहिं, जहां काम नहिं राम ।
एक संग नहिं रहि सकैं, 'तुलसी' छाया-घाम ॥

× × ×

नाथ, मैं—मैं और अनन्य दास ! असम्भव है, मेरे लिये असंभव है अनन्य दासत्वकी प्राप्ति। अनन्य दासका लक्षण तो तुमने भक्ताग्रगण्य मारुतिसे कुछ ऐसा कहा था—

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ, हनुमन्त !
मैं सेवक सचराचर-रूप स्वामि भगवन्त ॥

—तुलसी

मैं तो जन्म-जन्मका अपराधी हूं, कृतघ्न हूं, नखसे शिखतक विकारोंसे भरा हुआ हूं । सच पूछो तो विनती करना तो दूर है, मैं तुम्हें अपना मुहँ दिखाने लायक भी नहीं हूं । कबीरने बिल्कुल सच कहा है—

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज लगत है मोहि ।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावों तोहि ॥

पर सुना है कि तुम्हारी कृपा अनन्त है। केवल उसीका मुझे बल-भरोसा है। अब मेरे अपराधों और अपनी कृपाकी ओर देखकर जो तुम्हें अच्छा लगे सो करो—

औगुन किये तो बहु किये करत न मानी हार ।
भावै बन्दा बकसिये, भावै गरदन मार ॥

—कबीर

विश्वास तो यही है, कि तुम अपने सेवकको दण्डित न करोगे, उसके अगणित अपराधोंको क्षमा ही कर दोगे, क्योंकि तुम मेरे गरीब-निवाज मालिक ही नहीं हो, मेरे पिता भी हो। मेरी लाज तुम्हारे ही हाथमें है—

औगुन मेरे बापजी, बकस गरीबनिवाज ।
जो मैं पूत कपूत हौं तऊ पिताको लाज ॥

—कबीर

कुछ भी हो, मेरे मालिक ! अब मैं तुम्हारी नौकरी छोड़नेवाला नहीं । यह हाथमें आया दाव कैसे छोड़ दूं, स्वामी !

तुम्हरी भक्ति न छोड़हूं, तन मन सिर किन जाव ।
तुम साहिब मैं दास हूं, भलो बनो है दाव ॥

—चरणदास

सीस झुकाऊंगा तो तुम्हारे ही आगे, दीन वचन कहूंगा तो तुम्हींसे और लड़ूं झगड़ूंगा तो तुम्हारे ही साथ। अब तो मैं तुम्हारे ही चरणों के अधीन हूं—

सीस नवै तो तुमहिं कों, तुमहि सूं भाखूं दीन ।
जो झगरूं तो तुमहि सूं, तुव चरनन-आधीन ॥

—दयाबाई

अब तो तुम्हारे दरपर अड़कर बैठ गया हूं, मेरे स्वामी ! मनमें यह धारणा दृढ़ हो गयी है कि—

द्वार धनीके पड़ि रहै, धका धनीका खाय ।
कबहुंक धनी निवाजई, जो दर छांड़ि न जाय ॥

—कबीर

सो, अब—

हरि कीजत विनती यहै, तुमसों बार हजार ।
जिहिं-तिहिं भाँति डरयौ रहौं, परयौ रहौं दरबार ॥

—बिहारी

मैं यह भी नहीं जानता कि तुम्हें कैसे पुकारा जाता है। क्या कहकर तुम्हें पुकारूं ? कभी न कभी तो कृपा करोगे ही । द्वारपर धरना दिये बैठा हूं । देखूं, कब निहाल करते हो—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केहि बिधि रीझत हौ प्रभू, का कहि टेरूं नाथ!
लहर-मिहर जबही करौ, तबहीं होउँ सनाथ॥
—दयाबाई

तुम्हारी निराली रीझका ही एक भरोसा है। यह तो मानी हुई बात है कि पतितोंपर ही तुम रीझते हो। धन्य है तुम्हें और तुम्हारी अनोखी रीझको! हरिश्चन्द्रने क्या अच्छा कहा है—

भरोसो रीझन ही लखि भारी।

हमहूँकों विश्वास होत है मोहन पतित-उधारी।
जो ऐसो स्वभाव नहिं होतो, क्यों अहीर-कुल भायो?
तजिकैं कौस्तुभ-सो मनिगर क्यों गुंजा-हार धरायो?
क्रीट मुकुट सिर छाँडि पखौआ मोरन कौ क्यों धारयो?
फेंट कसी टेंटिनपै, मेवन कौ क्यों स्वाद बिसारयो?
ऐसी उलटी रीझ देखि कैं उपजति है जिय आस।
जग-निन्दित हरिचन्दहुकों अपनावहिंगे करि दास॥

बलिहारी! कैसी उलटी रीझ है तुम्हारी! कैसी ही हो, हम-जैसे पापियोंके तो बड़े कामकी है। इतना तो मुझे विश्वास है कि मैं तुम्हें एक-न-एक दिन रिझाकर ही रहूंगा। मैं पापियोंकी दौड़में किसीसे पीछे रहनेवाला नहीं। सबसे दो क़दम आगे ही देखोगे। पतित मैं, कलंकी मैं, अपराधी मैं, हीन मैं, दीन मैं, बोलो, मैं क्या नहीं हूं? किस रिझवार पापीसे कम हूं? आश्चर्य यही है कि तुम अबतक मुझपर रीझे नहीं। इससे या तो मैं पतित नहीं, या तुम पतितपावन नहीं। या तो मैं ग़रीब नहीं, या तुम ग़रीबनिवाज नहीं। हो सकता है कि तुम पतित-पावन और ग़रीब-निवाज न हो, पर यह कभी सम्भव नहीं कि मैं पतित और ग़रीब न होऊँ। मुझे अपने ऊपर अविश्वास या सन्देह हो ही नहीं सकता। तब तो नाथ! यही प्रतीत होता है कि तुम्हारा विरद ही झूठा है। न तुम अब वैसे पतित-पावन ही रहे और न वह ग़रीबनिवाज ही। तो फिर क्यों ऐसे झूठे और निस्सार नाम रखा लिये हैं? क्या कहें, क्या न कहें!

दीन-दयालु कहाइकैं, धाइकैं दीनन सों क्यों सनेह बढ़ायो?
त्यों 'हरिचन्दजू' वेदनमें करुनानिधि नाम कहौ क्यों गनायो?
ऐसी रुखाई न चाहिए तापै कृपा करिकैं जेहिकों अपनायो?
ऐसो ही जोपै स्वभाव रह्यो तौ'गरीब-निवाज'क्यों नाम धरायो?

हे प्रभो! मेरी नीचता देखकर संकोच न करो। इस अपार भव-सरितसे पार कर दो—

तारे तुम बहु पथिनकों, यह नद-धार अपार।
पार करौ इहि दीनकों, पावन खेवनहार॥
पावन खेवनहार तजौ जनि क्रूर कुबरनैं।
बरनैं नहीं सुजान, प्रेम लखि लेहिं सुबरनैं॥
बरनैं दीनदयाल नाव गुन हाथ तिहारे।
हारेको सब भाँति सु बनिहैं पार उतारे॥

मैं तुम्हारी सेवा-पूजा करना क्या जानूँ, भगवन्! मैं एक दरजेका कामचोर तुम्हारी नौकरी कैसे बजा सकता हूं। यदि पूछो तो फिर तू जानता क्या है, तो जानता सिर्फ़ इतना हूं कि मैं तुम्हारा एक नमकहराम नौकर हूं। सुना है कि तुम मुझे बरख़ास्त कर रहे हो। ग़रीबपरवर, क्या यह सच है? कहीं ऐसा काम सचमुच कर न बैठना, मेरे दाता! और चाहे जो सज़ा देदो, पर अपने चरण न छुड़ाओ, मेरे स्वामी! तुम्हें छोड़ यहां मेरा और कौन है। मेरे-जैसे तो तुम्हें सैकड़ों मिल जायंगे—

तुमकूं हम-से बहुत हैं, हमकूँ तुम-से नाहिं।
'दादू' कूँ जनि परिहरौ, रहु नित नैनन माहिं॥

जो कहीं मुझे अपनी नौकरीसे अलग कर दिया, तो फिर मैं कहां मारा-मारा फिरूंगा? लोग क्या कहेंगे, ज़रा ख़याल तो करो। मेरी नहीं, इससे तुम्हारी ही हँसी होगी, स्वामी!

दीन-दयालु सुनें जबतें, तबतें मनमें कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहायकैं जाऊँ कहाँ,तुम्हरे हितकी पट खैंचि कसी है॥
तेरो ही आसरो एक'मलूक'नहीं प्रभु सो कोउ दूजो जसी है।
एहो मुरारि,पुकारि कहौं अब,मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और तो नहीं,पर मेरे एक इस विषयकी तुम भलीभाँति परीक्षा ले सकते हो, कि धक्के-मुक्के खानेपर भी मैं तुम्हारे द्वारसे हटता हूं या नहीं। चाहो तो मेरे इस गुणको अपनी कसौटीपर अभी कस लो—

तू साहिब, मैं सेवक तेरा । भावै सिर दै सूली मेरा ॥
भावै करवत सिरपर सारि । भावै लेकरि गरदन मारि ॥
भावै चहुं दिसि आगि लगाइ । भावै काल दसो दिसि खाइ ॥
भावै गिरिवर गगन गिराइ । भावै दरिया माहिं बहाइ ॥
भावै कनक-कसौटी देहु । दादू सेवक कसि कसि लेहु ॥

अब तो तुम भलीभाँति समझ गये होगे कि मैं तुम्हारा सेवक तो निस्सन्देह हूं, पर सेवा करना नहीं जानता, या जानकर करना नहीं चाहता। है भी यही बात। माफ़ करना, मुझे नमकहरामीमें ही मज़ा आता है। मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम मुझे नौकरीसे पृथक् कर दोगे। क्या सचमुच ही अपने चरणोंसे मुझे अलग कर दोगे? हाहा! नाथ, ऐसा न करना। तुम्हारे क़दमोंकी ग़ुलामी बड़े भाग्यसे मिली है। इस ग़ुलामीको ही मैं आज़ादी समझता हूँ, और ऐसा समझना ही आज मेरे जीवनका सबसे बड़ा सत्य है। एक तो तुम मुझे निकालोगे नहीं, दूसरे, मान लो, निकाल भी दिया तो, मैं यह द्वार छोड़ कहीं जाऊँगा नहीं। जानेको कहीं कोई ठौर भी तो हो प्रभो!

तुम जहाज, मैं काग तिहारो, तुम तजि अनत न जाउँ।
जो तुम प्रभु जू! मारि निकासो,और ठौर नहिँ पाउँ॥

इससे, सरकार, मुझे बरख़ास्त कर देनेका विचार तो अब छोड़ ही दो।

× × × ×

नाथ! मुझें तो इसीका आज बड़ा अभिमान है कि तुम मेरे स्वामी हो और मैं तुम्हारा सेवक हूं। तुम चन्दन हो और मैं पानी हूं। तुम श्यामघन हो और मैं तुम्हें देख-देखकर थिरकनेवाला मोर हूं। तुम पूर्ण चन्द्र हो और मैं तुम्हारा चाह-भरा चकोर हूं। तुम दीपक हो और मैं तुम्हारे प्रेममें बलनेवाली बाती हूं। तुम मोती हो और मैं धागा हूं। और, प्रभो! तुम सुवर्ण हो और मैं तुमसे मिलनेवाला सुहागा हूं। अपने इस अभिमानको, नाथ,मैं स्वप्नमें भी न छोड़ूँगा। अब सन्त रैदासजीकी विमल वाणीमें इस भावनाको सुनें--

अब कैसे छुटै नामरट लागी।
प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी। जाकी अँग-अँग बास समानी॥
प्रभुजी, तुम घन हम वनमोरा। जैसे चितवत चन्द चकोरा॥
प्रभुजी,तुम दीपक हम बाती। जाकी ज्योति बरै दिन राती॥
प्रभुजी,तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहिँ मिलत सोहागा॥
प्रभुजी,तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

तुम मेरे सेव्य हो और मैं तुम्हारा सेवक हूं-- बस, हम दोनोंमें यही एक सम्बन्ध अनन्तकाल-पर्यन्त अक्षुण्ण बना रहे। पूरी कर देनेको कहो तो दासकी एक अभिलाषा और है। वह यह है—

अहं हरे तवपादैकमूल
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेताऽसुपतेर्गुणानां
गृणीत वाक् कर्मकरोतु कायः॥

अर्थात्, हे भगवन्! मैं बार बार तुम्हारे चरणारविन्दोंके सेवकोंका ही दास होऊँ। हे प्राणेश्वर! मेरा मन तुम्हारे गुणोंका स्मरण करता रहे। मेरी वाणी तुम्हारा कीर्तन किया करे। और, मेरा शरीर सदा तुम्हारी सेवामें लगा रहे।

किसी भी योनिमें जन्म लूं, 'त्वदीय' ही कहा जाऊं, मुझे अपना कहीं और परिचय न देना पड़े। सेवकको इससे अधिक और क्या चाहिये। अन्तमें यही विनय है, नाथ!

अर्थ न धर्म न काम-रुचि, गति न चहौं निर्बान।
जन्म जन्म रति राम-पद, यह बरदान न आन॥
परमानन्द कृपायतन, मन परिपूरन काम।
प्रेम-भगति अनपायिनी, देहु हमहिँ श्रीराम॥
—तुलसी

क्यों नहीं कह देते, कि 'एवमस्तु!' *

* 'प्रेमयोग' नामक अमुद्रित ग्रन्थसे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दीवानोंकी दुनियाँ

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

गवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि "जो सब भूतप्राणियोंके लिये रात्रि है, संयमी पुरुष उसमें जागता है और सब भूतप्राणी जिसमें जागते हैं, तत्त्वदर्शी मुनिके लिये वह रात्रि है।" अर्थात् साधारण भूतप्राणी और यथार्थ तत्त्वके जाननेवाले अन्तर्मुखी योगियोंके ज्ञानमें रातदिनका अन्तर है । साधारण संसारी-लोगोंकी स्थिति क्षणभंगुर विनाशशील सांसारिक भोगोंमें होती है, उल्लूके लिए रात्रिकी भाँति उनके विचारमें वही परम सुखकर हैं, परन्तु इसके विपरीत तत्त्वदर्शियोंकी स्थिति नित्य शुद्ध बोधस्वरूप परमानन्द परमात्मामें होती है, उनके विचारमें सांसारिक विषयोंकी सत्ता ही नहीं है, तब उनमें सुखकी प्रतीति तो होती ही कहाँसे ? इसीलिये सांसारिक मनुष्य जहां विषयोंके संग्रह और भोगमें लगे रहते हैं,—उनका जीवन भोग-परायण रहता है, वहां तत्त्वज्ञ पुरुष न तो विषयोंकी कोई परवा करते हैं और न भोगोंको कोई वस्तु ही समझते हैं। साधारण लोगोंकी दृष्टिमें ऐसे महात्मा मूर्ख और पागल जँचते हैं, परन्तु महात्माओंकी दृष्टिमें तो एक ब्रह्मकी अखण्ड सत्ताके सिवा मूर्ख-विद्वान्की कोई पहेली ही नहीं रह जाती। इसीलिये वे जगत्को सत्य और सुखरूप समझनेवाले अविद्याके फन्देमें फँसकर रागद्वेषके आश्रयसे भोगोंमें रचे-पचे हुए लोगोंको समय समयपर सावधान करके उन्हें जीवनका यथार्थ पथ दिखलाया करते हैं। ऐसे पुरुष जीवन-मृत्यु दोनोंसे ऊपर उठे हुए होते हैं। अन्तर्जगत्में प्रविष्ट होकर दिव्यदृष्टि प्राप्त कर लेनेके कारण इनकी दृष्टिमें बहिर्जगत्का स्वरूप कुछ विलक्षण ही हो जाता है। ऐसे ही महात्माओंके लिये भगवान्ने कहा है—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

'सब कुछ एक वासुदेव ही है, ऐसा माननेजाननेवाला महात्मा अति दुर्लभ है।' ऐसे महात्मा देखते हैं कि 'सारा जगत् केवल एक परमात्माका ही विस्तार है, वही अनेक रूपोंसे इस संसारमें व्यक्त हो रहे हैं। प्रत्येक व्यक्त वस्तुके अन्दर परमात्मा व्याप्त हैं। असलमें व्यक्त वस्तु भी उस अव्यक्तसे भिन्न नहीं है। परम रहस्यमय वह एक परमात्मा ही अपनी लीलासे भिन्न भिन्न व्यक्तरूपोंमें प्रतिभासित हो रहे हैं, जिनको प्रतिभासित होते हैं, उनकी सत्ता भी उन परमात्मासे पृथक् नहीं है।' ऐसे महात्मा ही परमात्माकी इस अद्भुत रहस्यमय पवित्र गीतोक्त घोषणाका पद पदपर प्रत्यक्ष करते हैं कि—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥

'मुझ सच्चिदानन्दघन अव्यक्त परमात्मासे यह समस्त विश्व परिपूर्ण है, और ये समस्त भूत मुझमें स्थित हैं, परन्तु मैं उनमें नहीं हूं. ये समस्त भूत भी मुझमें स्थित नहीं हैं, मेरी योगमाया और प्रभावको देख, कि समस्त भूतोंका धारण पोषण करनेवाला मेरा आत्मा उन भूतोंमें स्थित नहीं है।' अजब पहेली है, पहले आप कहते हैं कि 'मेरे अव्यक्त स्वरूपसे सारा जगत् भरा है, फिर कहते हैं, जगत् मुझमें है, मैं उसमें नहीं हूं', इसके बाद ही कह देते हैं कि न तो यह जगत् ही मुझमें है और न मैं ही इसमें हूं। यह सब मेरी मायाका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अप्रतिम प्रभाव है।' मेरी लीला है। यह अजब उलझन उन महात्माओंकी बुद्धिमें सुलझी हुई होती है, वे इसका यथार्थ मर्म समझते हैं। वे जानते हैं कि जगत्‌में परमात्मा उसी तरह सत्य-रूपसे परिपूर्ण है, जैसे जलसे बर्फ ओतप्रोत रहती है यानी जल ही बर्फके रूपमें भास रहा है। यह सारा विश्व कोई भिन्न वस्तु नहीं है; परमात्माके सङ्कल्पसे, बाजीगरके खेलकी भांति, उस सङ्कल्पके ही आधारपर स्थित है। जब कोई भिन्न वस्तु ही नहीं है तब उसमें किसीकी स्थिति कैसी? इसीलिये परमात्माके सङ्कल्पमें ही विश्वकी स्थिति होनेके कारण वास्तवमें परमात्मा उसमें स्थित नहीं है। परन्तु विश्वकी यह स्थिति भी परमात्मामें वास्तविक नहीं है, यह तो उनका एक सङ्कल्पमात्र है। वास्तवमें केवल परमात्मा ही अपने आपमें लीला कर रहे हैं, यही उनका रहस्य है! इस रहस्यको तत्त्वसे समझनेके कारण ही महात्माओंकी दृष्टि दूसरी हो जाती है। इसीलिये वे प्रत्येक शुभाशुभ घटनामें सम रहते हैं—जगत्‌का बड़ेसे बड़ा लाभ उनको आकर्षित नहीं कर सकता, क्योंकि वे जिस परम वस्तुको पहचानकर प्राप्त कर चुके हैं उसके सामने कोई लाभ, लाभ ही नहीं है। इसी प्रकार लोकदृष्टिसे भासनेवाले महान्‌से महान् दुःखमें वे विचलित नहीं होते, क्योंकि उनकी दृष्टिमें दुःख-सुख कोई वस्तु ही नहीं रह गये हैं। ऐसे महापुरुष ही ब्रह्ममें नित्य स्थित समझे जाते हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः॥

ऐसे स्थिरबुद्धि संशय-शून्य ब्रह्मवित् महात्मा लोकदृष्टिसे प्रिय प्रतीत होनेवाली वस्तुको पाकर हर्षित नहीं होते और लोकदृष्टिसे अप्रिय पदार्थको पाकर उद्विग्न नहीं होते, क्योंकि वे सच्चिदानन्द-घन सर्वरूप परब्रह्म परमात्मामें नित्य अभिन्न भावसे स्थित हैं। जगत्‌के लोगोंको जिस घटनामें अमंगल दीखता है, महात्माओंकी दृष्टिमें वही घटना ब्रह्मसे ओतप्रोत होती है, इसलिये वे न तो ऐसी किसी घटनाका विरोध करते हैं और न उससे विपरीत घटनाके लिये आकांक्षा करते हैं। क्योंकि वे सांसारिक शुभाशुभके परित्यागी हैं।

ऐसे महापुरुषोंद्वारा जो कुछ क्रियाएं होती हैं, उनसे कभी जगत्‌का अमंगल नहीं हो सकता, चाहे वे क्रियाएं लोकदृष्टिमें प्रतिकूल ही प्रतीत होती हों। सत्यपर स्थित और केवल सत्यके ही लक्ष्यपर चलनेवाले लोगोंकी चाल विपरीतगति असत्य-परायण लोगोंको प्रतिकूल प्रतीत हो सकती है और वे सब उनको दोषी भी बतला सकते हैं, परन्तु सत्यपर स्थित महात्मा उन लोगोंकी कोई परवा नहीं करते। वे अपने लक्ष्यपर सदा अटलरूपसे स्थित रहते हैं। लोगोंकी दृष्टिमें महाभारत-युद्धसे भारतवर्षकी बहुत हानि हुई, पर जिन परमात्माके संकेतसे यह संहार-लीला सम्पन्न हुई, उनकी, और उनके रहस्य-को समझनेवाले दिव्यकर्मी पुरुषोंकी दृष्टिमें उससे देश और विश्वका बड़ा भारी मंगल हुआ। इसी-लिये दिव्यकर्मी अर्जुन भगवान्‌के सङ्केतानुसार सब प्रकारके धर्मोंका आश्रय छोड़कर केवल भगवान्‌के वचनके अनुसार ही महासंग्रामके लिये सहर्ष प्रस्तुत होगया था। जगत्‌में ऐसी बहुत-सी बातें होती हैं जो बहुसंख्यक लोगोंके मतसे बुरी होनेपर भी उनके तत्त्वज्ञके मतमें अच्छी होती हैं और यथार्थमें अच्छी ही होती हैं, जिनका अच्छापन समयपर बहुसंख्यक लोगोंके सामने प्रकट और प्रसिद्ध होनेपर वे उसे मान भी लेते हैं, अथवा ऐसा भी होता है कि उनका अच्छापन कभी प्रसिद्ध ही नहीं हो पाता। परन्तु इससे उनके अच्छे होनेमें कोई आपत्ति नहीं होती। सत्य कभी असत्य नहीं हो सकता, चाहे उसे सारा संसार सदा असत्य ही समझता रहे। अतएव जो भगवत्तत्त्व और भगवान्‌की दिव्य लीलाका रहस्य समझते हैं, उनके दृष्टिकोणमें जो कुछ यथार्थ प्रतीत होता है वही यथार्थ है। परन्तु उनकी यथार्थ प्रतीति साधारण बहुसंख्यक लोगों-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की समझसे प्रायः प्रतिकूल ही हुआ करती है। क्योंकि दोनोंके ध्येय और साधनमें पूरी प्रतिकूलता रहती है। सांसारिक लोग धन,मान, ऐश्वर्य, प्रभुता, बल, कीर्ति आदिकी प्राप्तिके लिये परमात्माकी कुछ भी परवा न कर अपना सारा जीवन इन्हीं पदार्थोंके प्राप्त करनेमें लगा देते हैं और इसीको परम पुरुषार्थ मानते हैं। इसके विपरीत परमात्मा-की प्राप्तिके अभिलाषी पुरुष परमात्माके लिये इन सारी लोभनीय वस्तुओंका तृणवत्, नहीं नहीं, विषवत् परित्याग कर देते हैं और उसीमें उनको बड़ा आनन्द मिलता है। पहलेको मान प्राण-समान प्रिय है तो दूसरा मान-प्रतिष्ठाको शूकरी-विष्ठा समझता है। पहला धनको जीवनका आधार समझता है तो दूसरा लौकिक धनको परमधनकी प्राप्ति-में प्रतिबन्धक मानकर उसका त्याग कर देता है। पहला प्रभुता प्राप्तकर जगत्‌पर शासन करना चाहता है तो दूसरा 'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना' बनकर महापुरुषोंके चरणकी रजका अभिषेक कर-नेमें ही अपना मंगल मानता है। दोनोंके भिन्न भिन्न ध्येय और मार्ग हैं। ऐसी स्थितिमें एक दूसरे-को पथभ्रान्त समझना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यह तो विषयी और मुमुक्षुका अन्तर है। परन्तु इससे पहले किये हुए विवेचनके अनुसार मुक्त अथवा भगवदीय लीलामें सम्मिलित भक्तके लिये तो जगत्‌का स्वरूप ही बदल जाता है। इसीसे वह इस खेलसे मोहित नहीं होता। जब छोटे लड़के काँचके या मिट्टीके खिलौनोंसे खेलते और उनके लेन-देन ब्याह-शादीमें लगे रहते हैं, तब बड़े लोग उनके खेलको देखकर हँसा करते हैं, परन्तु छोटे बच्चोंकी दृष्टिमें वह बड़ोंकी भांति कल्पित वस्तुओंका खेल नहीं होता। वे उसे सत्य समझते हैं और जरा-जरासी वस्तुके लिये लड़ते हैं, किसी खिलौनेके टूट जाने या छिन जानेपर रोते हैं,वास्तवमें उनके मनमें बड़ा कष्ट होता है। नया खिलौना मिल जानेपर वे बहुत हर्षित होते हैं। जब माता-पिता किसी ऐसे बच्चेको, जिसके मिट्टीके खिलौने टूट गये हैं या छिन गये हैं, रोते देखते हैं तो उसे प्रसन्न करनेके लिये कुछ खिलौने और दे देते हैं, जिससे वह बच्चा चुप हो जाता है और अपने मनमें बहुत हर्षित होता है परन्तु सच्चे हितैषी माता-पिता बालकको केवल खिलौना देकर ही हर्षित नहीं करना चाहते, क्योंकि इससे तो इस खिलौनेके टूटनेपर भी उन्हें फिर रोना पड़ेगा। अतएव वे समझाकर उनका यह भ्रम भी दूर कर देना चाहते हैं कि खिलौने वास्तवमें सच्ची वस्तु नहीं है। मिट्टीकी मामूली चीज़ हैं, उनके जाने-आने या बनने-बिगड़नेमें कोई विशेष लाभ-हानि नहीं है। इसी प्रकारकी दशा संसारके मनुष्योंकी हो रही है। संसारके लोग जिन सब वस्तुओंके नाश हो जानेपर रोते और पुनः मिलनेकी आकांक्षा करते हैं या जिनकी अप्राप्तिमें अभावका अनुभव कर दुखी होते हैं और प्राप्त होनेपर हर्षसे फूल जाते हैं, तत्त्वदर्शी पुरुष इस तरह नहीं करते, वे इस रहस्यको समझते हैं, इसलिये वे समय समयपर बच्चोंके साथ बच्चे बनकर खेलते हैं, बच्चोंके खेलमें शामिल हो जाते हैं, परन्तु होते हैं उन बच्चोंको खेलका असली तत्त्व समझाकर सदाको शोक-मुक्त कर देनेके लिये ही!

ऐसे भगवान्‌के प्यारे भक्त विश्वकी प्रत्येक क्रियामें परमात्माकी लीलाका अनुभव करते हैं, वे सभी अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओंमें परमा-त्माको ओतप्रोत समझकर, लीलारूपमें उनको अवतरित समझकर, उनके नित्य नये नये खेलोंको देखकर प्रसन्न होते हैं और सब समय सब तरहसे और सब ओरसे सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसे लोगोंको जगत्‌के लोग–जिनका मन भोगोंमें, उन्हें सुखरूप समझकर फँसा हुआ है, स्वार्थी, अकर्मण्य, आलसी, पागल, दीवाने और भ्रान्त समझते हैं, परन्तु वे क्या होते हैं, इस बातका पता वास्तवमें उन्हींको रहता है। ऐसे दीवानोंकी दुनियाँ दूसरी ही होती है, उस दुनियाँमें कभी राग-द्वेष,रोग-शोक, सुख-दुःख, नहीं होते, वह दुनियाँ सूर्य चन्द्रसे प्रकाशित नहीं होती, स्वतः प्रकाशित रहती है,इतनाही नहीं, उसी दुनिया-के परम प्रकाशसे ही सारे विश्वको प्रकाश मिलता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पवित्र नाम

(लेखक—साधु टी० एल०, वास्वानी)

श्रीचैतन्यका जीवन अप्रतिम सुन्दर है। जब मैं 'ब्रह्म कृपा हि केवलम्' मन्त्रका पाठ करता हूं,—जब मैं प्राचीन ऋषियोंके इस चिरन्तन मन्त्रका उच्चारण करता हूं, तभी मुझे श्रीचैतन्यका स्मरण हो आता है। श्रीचैतन्यके जीवनमें भगवत्कृपाका अद्भुत प्रभाव था। हम लोग जब बूढ़े हो जाते हैं, जब हमारे केश चाँदी-सदृश श्वेत हो जाते हैं, तब कहीं हमारे जीवन नवीन दिशाकी ओर घूमते हैं, तब हम भगवान्‌का चिन्तन करते हैं। अवश्य ही, यह भी भगवत्कृपासे ही होता है। परन्तु भगवत्कृपाका अपेक्षाकृत अधिक निर्मल, अधिक मूल्यवान् और अधिक प्रबल, स्पष्ट दर्शन तो हमें उन पुरुषोंके जीवनमें मिलता है जो यौवनके प्रारम्भसे ही भगवान्‌की ओर झुक जाते हैं। भगवच्चिन्तनके लिये युवा अवस्था ही उपयुक्त समय है। श्रीचैतन्य जब चौबीस सालके थे, तभी भगवत्कृपाकी वर्षाने उन्हें सिक्त कर दिया था। चौबीस वर्षकी अवस्थामें ही उनके जीवनका परिवर्तन हो गया और उन्होंने भगवदर्पित करके जीवन बिताना निश्चय कर लिया। उनकी वह मधुर छवि, जो आज प्रातःकाल मेरे हृदयमें थी, बड़ी ही करुणोत्पादक है।

श्रीचैतन्य एक दिन भगवान्‌के सौन्दर्यपर मुग्ध होकर पुरीके मन्दिरमें प्रवेश करते हैं, उस समय वे उस अनुपम परम पवित्र 'कृष्ण' के नामका गान कर रहे हैं। क्या वह श्रीकृष्णका स्वरूप नहीं था, जिसने गयाजीमें चैतन्यके सामने आकर उनके जीवनको पलट दिया था? भक्त अपने इष्टदेवका सदा ही कृतज्ञ रहा करता है। अतएव श्रीचैतन्य बार बार श्रीकृष्णके पुण्य-नामका कीर्तन कर रहे हैं। प्रभुका वह नाम उनके जीवनमें, उनके रक्तमें और उनके अस्थियोंमें ओतप्रोत था, यहां तक कि उनके हृदयके अन्तस्तलमें प्रवेश कर गया था। भगवान्‌के पावन नामकीर्तनके साथ ही उनके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बह रही है। मन्दिरकी रखवाली करनेवालोंको श्रीचैतन्यका यह ढंग अच्छा नहीं लगा। वे लोग श्रीचैतन्यको नहीं समझ सके। कोरे पण्डे, सच्चे सन्तोंको नहीं पहचान सकते। धर्मके इतिहासमें इन पण्डोंका सन्तोंके साथ सदैवसे विरोध रहा है। सन्त अपमानित किये गये, उनपर पत्थर बरसाये गये, वे शूलीपर चढ़ाये गये और उनकी हत्याएँ की गयी हैं। श्रीचैतन्यको भी मन्दिरके पण्डोंने खूब पीटा। इस दुर्घटनाका विचार आते ही आंखोंसे आंसू बहे बिना नहीं रहते। हा! वह ईश्वरका प्यारा, वह पवित्र पुरुष पीटा गया! श्रीचैतन्य अचेत होकर गिर पड़े। परन्तु उस मूर्छाकी स्थितिमें भी वे श्रीकृष्णका नाम उच्चारण कर रहे थे और उनकी आंखोंसे आंसू बह रहे थे। प्राचीन इतिहाससे पता लगता है, श्रीचैतन्य इस अचेत अवस्थामें आठ घण्टे तक रहे। पण्डोंको चिन्ता हुई, उन्हें भय हुआ,—ईश्वरका नहीं परन्तु मनुष्योंका। इस बातका कि, लोग कहेंगे, कि क्या एक सन्तको पीटते पीटते मार डाला? पण्डोंमेंसे एकने आकर श्रीचैतन्यके कानोंके समीप 'श्रीकृष्ण' नाम-कीर्तन आरम्भ कर दिया। आश्चर्य कि, सन्त तुरन्त ही जाग उठे। क्या इस नाममें कोई जादू है? हम कहते हैं कि हम भगवान्‌का चिन्तन करते हैं, परन्तु कहाँ? अरे! हमारे अन्दर वह तीव्र लालसा कहां है जो श्रीचैतन्यके हृदयमें थी? विश्वास करो कि भगवत्‌की लालसासे बढ़कर कोई निधि नहीं है। भगवत्-प्राप्तिकी इच्छासे बढ़कर सच्ची, हृदयको उद्भासित करनेवाली और प्राणोंको प्रोत्साहित करनेवाली अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह लालसा ही भगवत्कृपाका एक चिह्न है। इस आकांक्षाके अन्दर भगवत्प्रेमकी ज्योति जगमगा रही है। वे पुरुष बड़े ही पुण्यात्मा हैं जिनके दिनभरके सभी काम और रात्रिके स्वप्न इसी भगवत्‌की लालसासे जर्जरित रहते हैं। दुनियाँ इसको पागलपन कहती है, परन्तु यह पागलपन ही उच्चतम हृदयका शिरोभूषण है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

[मणि ८]

रूप तथा क्रियामें अनिर्वचनीयता

सनकादि:—जैसे नाम किसी प्रकारसे सिद्ध नहीं होता इसी प्रकार रूप तथा क्रिया भी किसी प्रकार सिद्ध नहीं होते, क्योंकि छोटा मुख और बड़ा उदर, यह घटका स्वरूप है। इस प्रकारका रूप जैसे घटसे भिन्न प्रतीत नहीं होता इसीप्रकार क्रिया भी रूपसे भिन्न होकर प्रतीत नहीं होती। इसलिये जैसे रूप रूपसे भिन्न नहीं है इसीप्रकार क्रिया भी रूपसे भिन्न नहीं है। सम्पूर्ण रूप नामके अनुसार ज्ञानको उत्पन्न करता है। इसलिये रूप वास्तविक नहीं है, विकल्प-मात्र है। श्रुतिमें भी सर्व विकारको नाममात्र कहा है। जैसे मनुष्यमें शृंग असत्य है इसीप्रकार रूप भी असत्य है।

प्रजा:—हे भगवन्! असत्य वन्ध्यापुत्र तथा नरशृंगमें, यह वन्ध्यापुत्र है, और यह नरका शृंग है, ऐसा ज्ञान नहीं होता परन्तु घटादि पदार्थोंमें तो, यह घट है, ऐसा ज्ञान होता है। इसलिये वन्ध्यापुत्र तथा घट-पटादि रूपकी तुल्यता सिद्ध नहीं होती।

सनकादि:—हे प्रजा! नरशृंगमें तथा वन्ध्यापुत्र-में, नरशृंग है तथा वन्ध्यापुत्र है, इसप्रकारका जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह निवारण नहीं होता, यानी ज्ञान होता ही है। सांख्य-शास्त्रवाले विकल्प ज्ञानके विषय वन्ध्यापुत्रादिको असत्य पदार्थरूप मानते हैं और नैयायिक उनको आहार्य ज्ञानके विषयरूप मानते हैं। जिस स्थानपर जिस वस्तुका अत्यन्त अभाव हो, उस स्थानपर उस वस्तुका ज्ञान जो पुरुषकी इच्छासे उत्पन्न हो, वह ज्ञान आहार्य कहलाता है। जैसे जलमें अग्निका अत्यन्त अभाव है, वहां किसी पुरुषकी यह इच्छा हो कि मुझे यहां अग्निका ज्ञान हो, उस पुरुषकी इच्छासे जब उसको ऐसा ज्ञान हो कि यह जल अग्निवाला है, ऐसे ज्ञानको नैयायिक आहार्य कहते हैं। ऐसा कहनेसे यह सिद्ध होता है कि जैसे 'घट है' 'पट है' इस ज्ञानके विषय घट-पटादि हैं, इसी प्रकार वन्ध्यापुत्र है, नरशृंग है, इस आहार्य ज्ञानके विषय वन्ध्या-पुत्र तथा नरशृंगादि हैं, इसलिये दोनों समान हैं।

प्रजा:—हे भगवन्! घट है तथा वन्ध्यापुत्र है, ये दोनों ज्ञान समान नहीं हैं क्योंकि घटादिका ज्ञान इन्द्रियजन्य है परन्तु वन्ध्यापुत्रका ज्ञान इन्द्रियजन्य नहीं है।

सनकादि:—हे प्रजा! यह बताओ कि घटादिका ज्ञान सम्पूर्ण इन्द्रियजन्य होनेसे वन्ध्यापुत्रके ज्ञानसे विलक्षण है या एक इन्द्रियजन्य होनेसे? इनमें प्रथम पक्ष नहीं बनता, क्योंकि गन्ध-ज्ञानकी एक घ्राण-इन्द्रिय कारण है, चक्षु आदि इन्द्रियां गन्धज्ञानकी कारणरूप नहीं है। इसीप्रकार रूप-ज्ञानकी चक्षु-इन्द्रिय कारण है अन्य इन्द्रियां नहीं। इसलिये जैसे धनकी वृद्धिकी इच्छासे व्यापारमें प्रवृत्त हुए मनुष्यके मूल-धनकी हानि हो जाती है, इसीप्रकार वन्ध्या-पुत्रसे घटादिमें विलक्षणताकी सिद्धिके लिये सर्व इन्द्रियजन्य ज्ञानकी विषयता माननेमें गन्धादिको वन्ध्या-पुत्रकी तुल्यता ही प्राप्त होती है, क्योंकि गन्धादिमें सर्व इन्द्रियजन्य ज्ञानकी विषयता है नहीं। गन्धादिमें तो एक एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियजन्य ज्ञानकी विषयता ही है और असत्य नर-शृंग वन्ध्यापुत्रमें नहीं है, इसलिये दोनों ज्ञान-की विलक्षणता है, यह दूसरा पक्ष भी नहीं बनता क्योंकि यदि गन्धादिमें एक एक इन्द्रियजन्य ज्ञानकी विषयतारूप विशेषता मानोगे तो तुम्हारे मतानुसार नर-शृंगादिका ज्ञान मनरूप इन्द्रियजन्य होगा, इस विशेषतासे भी वन्ध्यापुत्रसे गन्धादिकी विलक्षणता सिद्ध नहीं होती।

प्रजाः—मनसे वन्ध्यापुत्रका ज्ञान नहीं होता, क्योंकि नेत्रादि इन्द्रियोंके बिना मन किसी ज्ञानको उत्पन्न नहीं करता। नेत्रादि इन्द्रियोंका वन्ध्यापुत्रके साथ सम्बन्ध है नहीं, यही वन्ध्यापुत्रके ज्ञानमें प्रतिबन्धक है, इसलिये मनको इन्द्रियोंकी अपेक्षा है ही।

सनकादिः—सम्पूर्ण ज्ञानकी उत्पत्तिमें मनको इन्द्रियोंकी अपेक्षा हो, ऐसा नियम नहीं है। जैसे नेत्रादिके अविषयरूप सुखादिका ज्ञान मनसे होता है इसी प्रकार वन्ध्यापुत्रका ज्ञान भी होता ही है। इसलिये वन्ध्यापुत्र और वन्ध्यापुत्रके ज्ञानमें कुछ विलक्षणता नहीं है।

प्रजाः—मनसे असत्य वस्तुका ज्ञान नहीं होता, यह लोकमें प्रसिद्ध है।

सनकादि—जैसे वैरीमें रहनेवाला दुःख सुखरूप न होनेसे वन्ध्यापुत्रके समान असत्य है, तो भी वैरीके दुःखको पुरुष सुखरूप मानता है, यह बात लोकमें प्रसिद्ध है। इसी प्रकार असत्य वन्ध्या-पुत्र-का ज्ञान मनसे बनता है। घटादि पदार्थोंमें पुरुषकी वृत्ति इच्छाजन्य है, क्योंकि इच्छा बिना किसी वस्तुमें प्रवृत्ति नहीं होती और इच्छा ज्ञानजन्य है। अन्य देशोंमें रहे हुए पदार्थके ज्ञानका अभाव होनेसे उस पदार्थकी इच्छा नहीं होती। इस प्रकार प्रवृत्तिके पूर्वकालमें इच्छाजन्य प्रवृत्तिका ज्ञान विचारवान् पुरुषको शब्द बिना नहीं होता। शब्दको विषय करनेवाला यह ज्ञान ही अर्थको विषय करता है इसलिये नाम तथा रूप एक ही ज्ञानके विषयरूप होनेसे अभेद सिद्ध होते हैं। इस प्रकार नाम,रूप तथा क्रिया सिद्ध नहीं होती।

पञ्चभूतोंमें अनिर्वचनीयता

नाम, रूप तथा क्रियासे भिन्न होकर पञ्चभूत किसी स्थलपर नहीं रहते। इसलिये वे अनिर्वचनीय हैं। इन पञ्चभूतोंमें भी तुम आकाशका स्वरूप किस प्रकारका मानते हो?

प्रजाः—हे भगवन्! आकाश अवकाशस्वरूप है, यह लोकमें प्रसिद्ध है।

सनकादिः—हे प्रजा! आकाश अवकाशस्वरूप है, यह जो तुम कहते हो तो आवरणके अभावका जो अधिकरण है, वह आकाश है, आकाशका यह लक्षण सिद्ध हुआ। यह लक्षण वन्ध्या-पुत्रमें भी घटता है, क्योंकि जैसे आकाशमें आवरणका अभाव है ऐसे ही वन्ध्या-पुत्रमें भी आवरणका अभाव है। असत्य वस्तुमें अभावकी अधिकरणता शास्त्रकार मानते हैं इसलिये जैसे तुम आकाशको अवकाशरूप मानते हो, ऐसे ही वन्ध्या-पुत्रको अवकाशरूप क्यों नहीं मानते? वन्ध्या-पुत्रमें भी अवकाश-रूपता बनती है। यानी आकाशके लक्षणकी वन्ध्या-पुत्रमें अतिव्याप्ति है इसलिये इस दुष्ट लक्षणसे आकाशकी सिद्धि नहीं होती।

प्रजाः—जो शब्द-गुणवाला तथा अवकाश स्वरूप हो, वह आकाश कहलाता है। यद्यपि पूर्वोक्त रीतिसे वन्ध्या-पुत्रमें अवकाशरूपता है किन्तु उसमें शब्द-गुण नहीं है। आकाशमें शब्द-गुण है, इसलिये वन्ध्या-पुत्रसे आकाशका भेद है। अतः वन्ध्या-पुत्रमें आकाशके लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं है।

सनकादिः—शब्द-गुण होनेसे वन्ध्या-पुत्र और आकाशका भेद सिद्ध नहीं होता, क्योंकि शब्द-गुण आकाश-गुणसे भिन्न है या अभिन्न है। इनमेंसे प्रथम भिन्न पक्ष नहीं बनता, क्योंकि घटसे पट भिन्न है, इसलिये घटका गुण पट नहीं होता। ऐसे ही यदि आकाश-गुणसे शब्द-गुण भिन्न मानोगे तो आकाश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का गुण शब्द नहीं होगा अतएव प्रथम पक्ष नहीं बनता और शब्द-गुण आकाशसे अभिन्न है, यह दूसरा पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि गन्ध-गुणका गन्धसे अभेद है, इसमें ऐसा कोई नहीं कहता कि गन्धका गन्ध-गुण है, इसी प्रकार यदि आकाशसे शब्द-गुणका अभेद मानोगे तो आकाशका शब्द-गुण सिद्ध न होगा। यद्यपि शब्द और आकाशका कल्पित भेद माननेसे उन दोनोंका गुण-गुणी भाव बनता है, परन्तु जैसा पक्ष होता है वैसा ही उसका फल होता है। इसलिये कल्पित-भेदसे कल्पित-आकाशकी ही सिद्धि होगी, वास्तविक आकाशकी नहीं।

प्रज्ञाः—गुण तथा गुणीका तादात्म्य-सम्बन्ध होता है। भेदको निवारण करनेवाले अभेदको तादात्म्य कहते हैं। ये भेद तथा अभेद दोनों वास्तविक हैं। इसलिये वास्तविक भेदसे वास्तविक आकाशकी सिद्धि बनती है।

सनकादिः—विरुद्ध स्वभाववाले पदार्थ एक स्थानपर नहीं रहते। जैसे उष्ण-स्पर्श तथा शीत-स्पर्श एक वस्तुमें नहीं रहते। युक्ति-सहित बुद्धि-रूपी नेत्रसे समान सत्तावाला भेद तथा अभेद देखनेमें नहीं आता। दुराग्रहसे अंगीकार किये हुए वास्तविक भेद तथा अभेदका दोष भेद-पक्ष और अभेद-पक्षमें अवश्य प्राप्त होगा। इसलिये एक वस्तुमें वास्तविक भेद तथा अभेद नहीं बनता, और जिस भेद तथा अभेदसे तुम गुण-गुणी-भाव सिद्ध करते हो, उस भेद तथा अभेदका स्वरूप विचारकर देखनेसे सिद्ध नहीं होता, क्योंकि शब्दादि गुण तथा आकाशादि गुणीका भेद तथा अभेद जो तुम मानते हो तो यह बताओ कि वे भेद तथा अभेद शब्द तथा आकाशादिसे अभिन्न हैं अथवा भिन्न हैं। इनमें प्रथम अभिन्न पक्ष नहीं बनता, क्योंकि यदि भेद तथा अभेद वस्तुका स्वरूप मानोगे तो ये भिन्न तथा अभिन्न हैं, तथा यह भिन्न-अभिन्न दोनों हैं, ऐसा कथन असंगत होगा, क्योंकि 'घट घटको ले आओ, पट पटको ले आओ,' इस प्रकारके शब्द कोई विद्वान् कहींपर भी उच्चारण नहीं करता क्योंकि ये शब्द पुनरुक्ति-दोषवाले हैं। इसी प्रकार भेद तथा अभेदको वस्तुका स्वरूप माननेमें, यह फल वृक्षसे भिन्न है, यह घट मृत्तिकासे भिन्न है, तथा ये दोनों वस्तु स्वरूप हैं, ऐसा कहनेमें पुनरुक्ति दोष होता है। इसलिये भेद तथा अभेद वस्तुका स्वरूप नहीं हैं। भेद तथा अभेद वस्तुसे भिन्न हैं, यह दूसरा पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि भेदवालोंको भिन्न कहते हैं। भेद तथा अभेद वस्तुसे भिन्न हैं, ऐसा कहनेसे यह सिद्ध होता है कि भेद तथा अभेद वस्तुसे भेदवाले हैं। इसमें दूसरे भेदका तीसरी वस्तुसे भेद मानोगे, तीसरे भेदका चौथीसे भेद मानोगे तो इस प्रकार भेदकी धारा माननेमें अनवस्था दोष प्राप्त होगा। इस दोषकी निवृत्तिके लिये तथा भेद-अभेदकी सिद्धिके लिये दूसरा भेद वस्तुका स्वरूप कहोगे तो तुम्हारा यह वचन बगुलेके बन्धनके समान हो जायगा। बगुलेको पकड़नेके लिये किसी मनुष्यने यह विचार किया कि मछलीमें एकाग्र-चित्तवाला यह बगुला पक्षी धूपमें रहता है इसलिये मैं उसके सिरपर मक्खन लगा आऊंगा। सूर्यकी धूपसे यह मक्खन पिघल जायगा और पिघलकर उसकी आंखोंमें पड़ेगा। मक्खन आंखोंमें पड़नेसे जब बगुला अन्धा हो जायगा तब मैं इसे पकड़ लूंगा। परन्तु इस पुरुषकी यह कल्पना वृथा ही है क्योंकि बगुलेके पास गये विना उसके सिरपर मक्खन नहीं लग सकता, पास जानेपर बगुला उड़ जायगा, फिर बन्धन कैसे बनेगा। अतएव जैसे इस पुरुषका मनोरथ वृथा है, इसी प्रकार प्रथम भेद तथा अभेदको वस्तुसे भिन्न मानकर उनकी सिद्धिके लिये कल्पना किया हुआ जो दूसरा भेद है, उस भेदको वस्तुका स्वरूप माननेमें भी केवल व्यर्थ ही प्रयास है। इसलिये शब्द-गुणकी किसी प्रकार सिद्धि नहीं होती। शब्दकी सिद्धि न होनेसे आकाशकी वन्ध्या-पुत्रसे विलक्षणता सिद्ध नहीं होती। जैसे आकाशका शब्द-गुण युक्तिसे सिद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं होता इसीप्रकार वायुका स्पर्श-गुण, अग्निका रूप-गुण, जलका रस-गुण तथा पृथ्वीका गन्ध-गुण पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध नहीं होता। इन स्पर्शादि गुणोंके सिद्ध न होनेसे वायु आदि भूतोंको भी वन्ध्या-पुत्रकी समानता है। जो अवकाश दे वह आकाश, जो स्पर्श करे वह वायु, जो अन्नादिको पचावे वह अग्नि, जो प्यास बुझावे वह जल, तथा जो लोकको धारण करे वह पृथ्वी। इस प्रकार आकाशादिके लक्षण लोक-प्रसिद्ध हैं, इनसे भी आकाशादिकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि आकाशादि पञ्चभूत सब लोकोंको अवकाशादि देते हैं अथवा कुछ प्राणियोंको देते हैं, यह विचारना चाहिये। इनमें प्रथम पक्ष असम्भव दोष-युक्त है क्योंकि वात-पित्तादि धातुओंकी न्यूनाधिकतासे जड़भावको प्राप्त हुए प्राणीको आकाश अवकाश नहीं देता, वायु स्पर्श नहीं करता, अग्नि पाकादिका कारणरूप नहीं होता, जल उसकी तृषाको नहीं बुझाता और पृथ्वी धारण नहीं करती। इस प्रकार अन्य धर्मोंमें सर्वत्र अनुगमका अभाव है और आकाशादि पञ्चभूतोंका मिथ्यापना सिद्ध है, क्योंकि जैसे स्वप्न-पदार्थ जिस कालमें प्रतीत होते हैं, उसी कालमें होते हैं, प्रतीतिसे पूर्व अथवा उत्तरकालमें नहीं होते इसलिये वे मिथ्या हैं, इसीप्रकार आकाशादि भूत भी जो प्रतीत होते हैं, सो प्रतीतिकालमें ही हैं, प्रतीतिसे पूर्वोत्तरकालमें नहीं, इसलिये वे भी मिथ्या हैं। जब आकाशादि पञ्चभूत असत्य हैं तो उनका कार्यरूप प्रपञ्च किस प्रकार सत्य हो सकता है, असत्य ही होना चाहिये। जैसे असत्य वन्ध्या-पुत्र-का पुत्र भी असत्य ही होता है, सत्य नहीं होता, इसीप्रकार असत्य पञ्चभूतोंका कार्य प्रपञ्च भी सत्य नहीं हो सकता। इसलिये आत्माके सिवा पञ्चभूत तथा उनका कार्यरूप प्रपञ्च वन्ध्या-पुत्रके समान असत्य ही है।

मायाकी असत्यरूपता

कार्य-प्रपञ्चकी माया बिना अनुपपत्तिरूप अर्थापत्ति-प्रमाणसे मायाकी सिद्धि है, श्रुति-प्रमाणसे मायाकी सिद्धि है अथवा अनुभव प्रमाणसे मायाकी सिद्धि है। इनमेंसे प्रथम पक्ष नहीं बनता, क्योंकि जैसे असत्य वन्ध्या-पुत्रकी मायासे उत्पत्ति नहीं होती इसीप्रकार पूर्वोक्त रीतिसे प्रपञ्च असत्य होनेसे असत्य प्रपञ्चकी मायासे उत्पत्ति नहीं बनती।

प्रजाः—लोकमें असत्यकी उत्पत्ति भी मायासे देखनेमें आती है। जैसे भूमिपर स्थित मायावी नट अपनी मायासे असत्यरूप अपना दूसरा स्वरूप आकाशमें स्थित दिखलाता है, इसी प्रकार असत्य प्रपञ्चकी भी मायासे उत्पत्ति क्यों नहीं बन सकती?

सनकादिः—इस स्थलपर निमित्त-कारणरूप मायासे सत्य मायावी पुरुषका ही अनेक रूपसे प्रादुर्भाव देखनेमें आता है यानी आकाशमें स्वरूपका परिणाम उपादान कारण माया नहीं है किन्तु मायाके विषयरूप नटका आत्मा ही अनेक रूपसे प्रतीत होता है, इस लिये असत्य वस्तुकी उत्पत्तिमें माया कहीं भी समर्थ देखनेमें नहीं आती, अतएव माया परतन्त्र है, स्वतन्त्र नहीं। इस कारण अर्थापत्ति-प्रमाणसे मायाकी सिद्धि नहीं होती। माया श्रुति-प्रमाणसे सिद्ध है, यह दूसरा पक्ष भी नहीं बनता। क्योंकि यद्यपि मायाको जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा नाशकी कारणता श्रुतिमें कही है परन्तु वह कारणता मायाकी नहीं है। माया स्वयं असत्य है। असत्य किसीका कारण अथवा कार्यरूप कभी नहीं हो सकता। मायासे जगत्की उत्पत्तिको बतानेवाली श्रुतिका तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्मके बतानेमें है, मायाके बतानेमें नहीं, क्योंकि श्रुति फलवाले अर्थका ही बोधन करती है। मायाके ज्ञानसे फलकी प्राप्ति नहीं होती, अद्वितीय आत्माके ज्ञानसे ही फलकी प्राप्ति होती है इसलिये श्रुतिसे मायाकी सिद्धि नहीं होती। इसी प्रकार माया अनुभवसे सिद्ध है, यह तीसरा पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि जिस समय अविवेकी पुरुष सच्चिदानन्दरूप अपने स्वरूपका अनुभव नहीं करता, उस समय ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह पुरुष 'मैं अज्ञानी हूं' इस प्रकार मायाको अपरोक्ष ज्ञानका विषयरूप मानता है। जैसे सोया हुआ बालक अपने देहको राक्षसरूप मानकर भयको प्राप्त होता है इसी प्रकार आनन्दस्वरूप आत्मा भी अपने सत् चित् स्वरूपके विस्मरण होनेसे आत्मस्वरूपको आवरण करनेवाली मायाकी आप ही कल्पना करता है। विचाररहित भ्रान्त पुरुषके अनुभवसे मायाकी सिद्धि नहीं हो सकती। यदि भ्रान्ति ज्ञानसे वस्तुकी सिद्धि हो जाय तो सीपमें रूपेकी तथा रज्जुमें सर्पकी भी सिद्धि होनी चाहिये। विचार सहित अनुभवके उदय होनेपर माया ठहर नहीं सकती। जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार क्षण भर भी नहीं ठहरता, इसी प्रकार विचार सहित अनुभवके उदय होनेपर माया लोप हो जाती है, इसलिये माया अनुभवसे भी सिद्ध नहीं होती। इस प्रकार किसी प्रमाणसे भी माया सिद्ध नहीं होती, इससे सिद्ध होता है कि अद्वितीय आत्मामें मायाका लेशमात्र भी सम्भव नहीं है।

प्रजाः—यदि चैतन्य आत्मामें माया नहीं है तो 'मैं अज्ञानी हूं' ऐसा अनुभव किसको विषय करता है?

सनकादिः—यह माया मुझ आत्मासे भिन्न नहीं है, किन्तु वह मेरा स्वरूप ही है। जिस प्रकार बालक शरीरसे भिन्न नहीं है इसी प्रकार माया मुझ आत्मासे भिन्न नहीं है। जैसे बालक अपने शरीरको ही राक्षस मानकर भयको प्राप्त होता है इसी प्रकार आत्मा भी अपने आपको ही अज्ञानी मानता है। यानी यथार्थ ज्ञानके अविषयरूप आत्माका स्वरूप ही, माया, अज्ञान, अविद्या इत्यादि शब्दोंसे कहनेमें आता है इसलिये माया स्वतन्त्र नहीं है, और स्वतन्त्र न होनेसे उसकी सिद्धि नहीं होती।

प्रजाः—माया, अज्ञान, अविद्या इत्यादि शब्द तथा ज्ञानके बलसे चैतन्य आत्मासे भिन्न स्वतन्त्र रूपसे मायाकी सिद्धि क्यों नहीं होती?

सनकादिः—यदि शब्द तथा ज्ञानकी प्रमाणता हो तो उसके बलसे मायाकी सिद्धि हो। शब्द तथा ज्ञान प्रमाणरूप नहीं होते, क्योंकि असत्य वस्तुके भी शब्द तथा ज्ञान होते ही हैं। जैसे असत्य वन्ध्या-पुत्रमें, यह वन्ध्या-पुत्र है, इस प्रकारका शब्द तथा ज्ञान होता है। इस शब्द तथा ज्ञानमें अपने विषयके सिद्ध करनेका सामर्थ्य नहीं है। शब्दका नामके विचारमें खण्डन हो चुका है।

ज्ञानरूप बुद्धिका खण्डन इस प्रकार है:—प्रथम यह विचार करना चाहिये कि बुद्धिका क्या स्वरूप है यानी बुद्धि बोधरूप है या अबोधरूप है, इसमें बुद्धि अबोधरूप है, यह पिछला पक्ष तो बन नहीं सकता, क्योंकि जैसे घटादि अबोधरूप होनेसे स्वतन्त्र नहीं हैं, परतन्त्र हैं। इसी प्रकार अबोधरूप होनेसे बुद्धिकी भी स्वतन्त्रता सिद्ध नहीं होती। बुद्धि बोधरूप है, इस प्रथम पक्षमें बोध धर्मरूप है, अथवा सर्वका अधिष्ठान धर्मीरूप है, यह कहना चाहिये। इनमेंसे धर्मरूप बोध है, इस प्रथम पक्षमें यदि बोधकी धर्मरूपता सिद्ध हो जाय तो बोधरूप बुद्धि भी सिद्ध हो जाय परन्तु विचार कर देखनेसे बोधकी धर्मरूपता सिद्ध नहीं होती। धर्मीरूप बोध है, इस दूसरे पक्षमें अधिष्ठानरूप परमात्मासे बोध अभिन्न होनेके कारण बोधरूप बुद्धि स्वतन्त्र नहीं सिद्ध होती। इस बातका निर्णय करनेके लिये प्रथम बोधके स्वरूपका विचार करना चाहिये, क्योंकि बोधके स्वरूपका निर्णय होनेपर ही बोधरूप बुद्धिका निर्णय हो सकेगा। प्रथम धर्म बोधरूप है, इस सम्बन्धमें विचार करते हैं तो वह बोध घट-पटादि विषयका धर्म है अथवा ज्ञानके कारण चक्षु आदि इन्द्रियका धर्म है, अथवा बुद्धिका धर्म है अथवा आत्माका धर्म है, यह जानना चाहिये। इनमेंसे विषयका धर्म बोध है, यह प्रथम पक्ष नहीं बनता, क्योंकि यदि घटादि विषयका धर्म बोध हो तो घटादि विषय चेतन होने चाहिये, क्योंकि यह नियम है कि जो बोधवाला होता है, वह चेतनरूप होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रश्नः-यदि ऐसा मानें कि घटादि विषय चेतनरूप हैं तो क्या हानि है ?

सनकादि:-यदि घटादिको चेतनरूप मानोगे तो उनको अपने ज्ञानके लिये दूसरेकी अपेक्षा न होगी, क्योंकि चेतन स्वप्रकाशरूप होता है। जो अपनी सिद्धिके लिये दूसरेकी अपेक्षा न करे, वह स्वप्रकाश कहलाता है। घटादि अपनी सिद्धिके लिये दूसरेकी अपेक्षा करते हैं इसलिये घटादि विषयका धर्म बोध नहीं है। यदि तुम घटादि विषयका धर्म बोध मानोगे, तो भोक्ता तथा भोग्यका विपरीत भाव प्राप्त होगा यानी प्रसिद्ध भोग्यरूप घटादि विषय भोक्तारूप हो जायंगे, और घटादि विषयसे भिन्न भोक्ता भोग्यरूप हो जायगा। भोक्ता बोधवाला होता है, यह भोक्ताका लक्षण है। घटादि विषयको भोक्ता कहना अनुभवसे विरुद्ध है; इसलिये घटादि विषयका धर्म बोध नहीं है, यह सिद्ध हुआ। इन्द्रियोंका धर्म बोध है, यह दूसरा पक्ष भी नहीं बनता क्योंकि जिसका जो धर्म होता है, वह सदा उसमें ही प्रतीत होता है। जैसे अग्निका उष्ण धर्म सदा अग्निमें रहता है। इसीप्रकार यदि बोध इन्द्रियोंका धर्म हो तो जहां जहां इन्द्रियां हों वहां वहां नियमसे बोध प्रतीत होना चाहिये, परन्तु इन्द्रियोंमें नियमपूर्वक बोध प्रतीत नहीं होता। कभी तो इन्द्रियोंकी सहायतासे बोध प्रतीत होता है और कभी नहीं प्रतीत होता, इसलिये इन्द्रियोंका धर्म बोध नहीं है।

नियमके अभावका निरूपणः-शब्दके विद्यमान होनेपर भी बहिरे पुरुषकी श्रोत्र-इन्द्रिय शब्दको नहीं जानती, इसी प्रकार रूप विद्यमान होनेपर अन्ध पुरुषकी चक्षु-इन्द्रिय रूपको नहीं जानती। जिस समय मन सावधान नहीं होता उस समय सम्मुख पड़ी हुई प्रत्यक्ष वस्तु अथवा पीछे पड़ी हुई वस्तुको पुरुषकी चक्षु-इन्द्रिय नहीं जानती, इसी प्रकार श्रोत्र-इन्द्रिय भी शब्दादि विषयको नहीं जानती। यदि इन्द्रियका धर्म बोध हो तो जहां इन्द्रिय हो, वहां अवश्य बोध होना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिये इन्द्रियका धर्म बोध नहीं है किन्तु इन्द्रियां बोधका उपकरण हैं और अन्तःकरणकी वृत्तिमें स्थित चेतनका नाम बोध है। यह वृत्ति इन्द्रियादिसे उत्पन्न होती है इसलिये इन्द्रियां बोधका उपकरण हैं। उपकरण माननेमें पूर्वोक्त दोषकी प्राप्ति नहीं होती। यदि बोध इन्द्रियोंमें स्थित हो तो बोध इन्द्रियोंका धर्म हो, परन्तु बोध किसी इन्द्रियमें प्रतीत नहीं होता। घट-पटादि अर्थमें बोध प्रतीत होता है। यानी स्फुरणका नाम बोध है, घटका स्फुरण होता है, पटका स्फुरण होता है, इस प्रकारके अनुभवसे बोध विषयमें स्थित होकर प्रतीत होता है। और परोक्षज्ञानके विषयभूत इन्द्रियोंमें बोध है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है।

प्रश्नः-जैसे नैयायिकोंके मतानुसार आत्मामें स्थित बोध घटादि पदार्थोंको विषय करता है, ऐसे ही इन्द्रियोंमें स्थित बोध भी घटादिको विषय करेगा। नैयायिक-मतके अनुसार बोधका घटादि विषयके साथ विषयतारूप सम्बन्ध यहां भी बन सकता है।

सनकादि:-यदि अन्य वस्तुमें स्थित बोध अन्य वस्तुको प्रकाशता हो तो तादात्म्य-सम्बन्धसे घटमें स्थित बोध पटको क्यों नहीं प्रकाशता ? जैसे इन्द्रियोंमें स्थित बोधका घटादि विषयके साथ विषयता-सम्बन्ध तुम मानते हो इसी प्रकार घटमें स्थित बोधका पटादिके साथ विषयता-सम्बन्ध मानना चाहिये। यदि चक्षु-इन्द्रियमें स्थित बोधसे घटादिका भान मानोगे तो तुम्हारे मतानुसार जैसे चक्षु-इन्द्रियका घटके साथ संयोग-सम्बन्ध है तथा घटमें स्थित रूपके साथ संयुक्त समवाय-सम्बन्ध है, इसी प्रकार घटमें स्थित रसादिके साथ भी चक्षुका संयुक्त समवाय-सम्बन्ध सम्भव है, इसलिये जैसे घटका रूप चक्षु-इन्द्रियमें स्थित बोधमें प्रतीत होता है ऐसे ही घटमें स्थित रसादि चक्षु-इन्द्रियमें स्थित बोधमें क्यों नहीं प्रतीत होते ? वे भी प्रतीत होने चाहिये। हमारे मतानुसार इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोषकी प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि रूपाकार वृत्तिमें आरूढ़ चेतनरूप बोधका तादात्म्यरूप विषय सम्बन्ध रूपके साथ ही है, रसके साथ नहीं है, इसलिये चक्षु-इन्द्रियसे रसकी प्रतीति नहीं होती। इतना कहनेसे यह सिद्ध होता है कि अन्य पदार्थमें स्थित बोध अन्य पदार्थको नहीं प्रकाशता। यदि ऐसा न मानोगे तो घटमें स्थित बोध पटको भी प्रकाश करेगा। ऐसा होनेसे अतिप्रसंग दोषकी प्राप्ति होगी। घटादिमें धर्मरूपसे बोध नहीं रहता किन्तु स्फुरणरूपसे रहता है। यदि घटादिमें धर्मरूपसे बोध रहे तो घटादिके बोधसे प्रकाश बने किन्तु घटादिमें धर्मरूपसे बोध नहीं रहता। यदि घटादिका धर्म बोध हो तो घटादि भोक्ता होने चाहियें, ऐसा ऊपर कह आये हैं। इसलिये इन्द्रियोंका धर्म बोध नहीं है। आत्माका धर्म बोध है, यह तीसरा पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि अन्यमें स्थित बोध अन्यको नहीं प्रकाशता। यहां भी दोषकी प्राप्ति होती है इसलिये आत्मामें धर्मरूपसे बोध नहीं रहता।

प्रजाः—आत्मामें स्थित बोध यद्यपि घटादिका प्रकाश नहीं करता परन्तु आत्माके प्रकाशके लिये आत्माका धर्म बोध मानना चाहिये।

सनकादिः—यदि आत्माका धर्म बोध हो तो धर्मसे धर्मी भिन्न होनेके कारण बोधसे भिन्न आत्माको जड़ता प्राप्त होगी। जैसे घटादिको बोध प्रकाशता है वैसे आत्माको बोध नहीं प्रकाशता, क्योंकि घटादि पदार्थ बोधमें कल्पित हैं इसलिये अधिष्ठान स्वरूप बोध उनको प्रकाशता है यानी घट उपहित चेतनमें घट कल्पित है। जिस समय अन्तःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकलकर घटाकार होती है, उस समय घट-उपहित चेतनके साथ वृत्ति-उपहित चेतनरूप बोधका अभेद होता है। यद्यपि चेतनमें परमार्थसे भेद नहीं है,उपाधिसे भेद है। ये उपाधियां जबतक भिन्न भिन्न देशमें रहती हैं तबतक चेतनमें भेद करती हैं। परन्तु जब ये उपाधियां एक देशमें स्थित होती हैं तब उपाधिवाले चेतनका भेद नहीं करतीं, उस समय चेतनका अभेद होता है। जैसे मठसे भिन्न देशमें जब घट रहता है तब घटाकाश तथा मठाकाशका भेद होता है। और जब मठके भीतर घट लाया जाता है तब मठाकाशके साथ घटका अभेद होता है, इसीप्रकार घट-उपहित चेतनके साथ अभेदभावको प्राप्त हुई घटाकार-वृत्ति उपहित चेतनरूप बोधमें घटादि कल्पित हैं। विचारकर देखनेसे तो अद्वितीय बोध स्वयं प्रकाश है। यदि इसप्रकारका अर्थ तुम्हारी बुद्धिमें आरूढ़ हो जाय तो यह अर्थ हमको भी इष्ट है। बोधकी स्वयं-प्रकाशता हम भी अंगीकार करते हैं।

प्रजाः—हे भगवन्! बोधको स्वयंप्रकाश मानने में क्या लाभ है?

सनकादिः—स्वयंप्रकाश बोधस्वरूप आत्मा मैं हूं, मुझसे भिन्न बोध नहीं है। यदि बोध आत्मासे भिन्न हो तो आत्मा घटादिके समान दृश्यरूप ठहरे। दृश्य वस्तु स्वयंप्रकाश नहीं होती, वह अन्यसे प्रकाश्य होती है। बोधको अन्यसे प्रकाश्य माननेमें पूर्वोक्त अनवस्थादि दोष प्राप्त होते हैं, इसलिये बोध आत्मासे अभिन्न है। बोधको आत्मस्वरूपता होनेसे भूमा-आनन्दकी प्राप्तिरूप लाभ होता है।

प्रजाः—भगवन्! भूमा-आनन्दकी प्राप्ति होनेसे उसकी रक्षाकी चिन्ता भी प्राप्त होगी!

सनकादिः—नहीं! अनित्य वस्तुकी रक्षा होती है, नित्य वस्तुकी रक्षा नहीं होती, सत्यस्वरूप आत्माको अनित्यता नहीं है इसलिये आत्मासे अभिन्न भूमा-आनन्दको भी अनित्यता नहीं हो सकती। भूमाका अर्थ व्यापक है।

आत्मामें तीन परिच्छेदका अभावः—जो वस्तु आदि कालमें तथा अन्त कालमें न हो, वह वस्तु अनित्य कहलाती है। मैं आनन्दस्वरूप आत्मा तीनों कालमें विद्यमान हूं, इसलिये आनन्दस्वरूप मैं आत्मा अनित्य नहीं हूं किन्तु नित्य हूं। मेरे सिवा मुझसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है, सर्वत्र मैं ही हूं, ऐसा कहनेसे आत्मामें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वस्तु-परिच्छेदका अभाव सिद्ध होता है। जो वस्तु किसी एक कारणमें, किसी एक देशमें अथवा किसी एक कालमें रहती है, वह वस्तु अपने आधार तथा जगत्से भिन्न होती है, इस भेदसे उस वस्तुकी अनित्यता प्राप्त होती है, क्योंकि जो जो भेदवाली वस्तु होती है, वह वस्तु अनित्य होती है,इसप्रकार-का नियम व्यास भगवान्ने कहा है (ब्र०सू०२।३।६) जैसे घट-पटादि पदार्थ भेदवाले होनेसे अनित्य हैं। घट-पटादिके समान मैं आनन्दस्वरूप आत्मा किसी कारणमें, अथवा किसी देश-कालमें ही नहीं रहता किन्तु सम्पूर्ण देश-कालादि कल्पित वस्तुओंका आधार मैं आनन्दस्वरूप आत्मा हूं, मुझ आनन्द स्वरूपका आधाररूप कोई वस्तु है नहीं इसलिये मुझ आनन्दस्वरूप आत्माको किसी प्रकार भी अनित्यता नहीं है। ऐसा कहनेसे आत्मामें देश-परिच्छेद तथा काल-परिच्छेदका अभाव सिद्ध होता है। देश, काल, देश-कालसे उत्पन्न हुए पदार्थ, तथा देश-कालमें स्थित सत्य तथा असत्यरूप जड़ पदार्थ, ये सब मुझ अधिष्ठानस्वरूप आत्मामें स्थित हैं। सर्वका अधिष्ठानरूप मैं आत्मा किसी अनात्म वस्तुमें स्थित नहीं हूं, मैं अपनी महिमामें ही स्थित हूं।

प्रपञ्चका आधार आत्मा:—जैसे मालाके मणके सूत्रमें रहते हैं इसी प्रकार यह स्थूल प्रपञ्च मुझ सूत्रात्मा-में रहता है। जैसे पृथ्वीके सूक्ष्म कण पृथ्वीमें रहते हैं इसी प्रकार यह सूक्ष्म प्रपञ्च कारणस्वरूप मुझ ईश्वरमें रहता है और जैसे गंगादि नदियोंका जल अपने नामरूपका परित्याग करके समुद्रमें स्थित होता है, इसी प्रकार यह अव्याकृतरूप कारण मुझ ब्रह्ममें स्थित होता है। जैसे अग्निमें धूमरूप अन्धकार रहता है इसीप्रकार सृष्टिकालमें अनित्य, जड़, दुःखरूप यह प्रपञ्च सत् चित् तथा आनन्दस्वरूप मुझ आत्मामें रहता है। जैसे वायुके आधाररूपसे गन्ध तथा तृण रहते हैं इसी प्रकार स्थितिकालमें यह प्रपञ्च मुझ आत्मामें रहता है। यहां गन्धसे गन्धके आधाररूप पृथ्वीका सूक्ष्म भाग समझना चाहिये। जैसे शरद् ऋतुमें आकाशके भीतर लय भावको प्राप्त हुए मेघ रहते हैं इसी प्रकार प्रलय-कालमें यह प्रपञ्च मुझ परमात्मामें रहता है। इस रीतिसे आत्मामें 'तत्' पदार्थ ईश्वरस्वरूपताद्वारा जगत्का आधारपना श्रुतियें कहा है और 'त्वं' पदार्थ जीवरूपताद्वारा कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि प्रपञ्चकी आधारता आत्मामें तीन दृष्टान्तोंसे दिखलाते हैं:—जैसे सुकृति-पुरुषमें दुष्टता कल्पित हो तथा जैसे दुष्ट पुरुषमें साधुता कल्पित हो तथा जैसे बालकके शरीरमें राक्षसभान कल्पित हो वैसे ही मुझ आत्मामें सम्पूर्ण जगत् कल्पित है। मैं आत्मा स्वयंप्रकाश तथा सुखस्वरूप हूं, मुझमें लेशमात्र भी दुःख नहीं है।

प्रजाः—हे भगवन्! जब सम्पूर्ण जगत्के आत्मा-रूप आप हैं तो जगत्में रहनेवाले दुःखके साथ आपका सम्बन्ध क्यों नहीं है ?

सनकादिः—हे प्रजा ! अद्वितीय आत्म-सम्बन्ध-विचार करनेसे जगत्में कदापि दुःख नहीं है। क्योंकि उत्पन्न होनेवाली प्रत्येक वस्तु जड़ होती है और दुःख भी उत्पन्न होता है इसलिये दुःख भी जड़-रूप है। मुझ चेतनरूप आत्मामें जड़ वस्तु परमार्थ-से नहीं है, इसलिये दुःखके साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है।

प्रजाः—हे भगवन्! जैसे दुःख उत्पन्न होता है इसलिये जड़ है, इसी प्रकार सुख भी उत्पन्न होता है इसलिये वह भी जड़ है। और आप कहते हैं कि जड़ वस्तु परमार्थसे नहीं होती इसलिये सुख-स्वरूपता भी आत्मामें नहीं होगी।

सनकादिः—हे प्रजा ! जैसे दुःख उत्पन्न होता है ऐसे सुख उत्पन्न नहीं होता। सुख आत्मस्वरूप है इसलिये विवेकी पुरुषोंने उसकी उत्पत्ति नहीं मानी है। किन्तु सुखको नित्य माना है। मूढ़ पुरुष आनन्दस्वरूप आत्माके प्रतिबिम्बयुक्त अन्तः-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करणकी वृत्तिको सुखरूप मानकर उसकी उत्पत्ति और नाश मानते हैं।

प्रजा:—हे भगवन्! यह अन्तःकरणकी वृत्ति ही मुख्य सुखरूप क्यों नहीं हो सकती?

सनकादि:—हे प्रजा! अन्तःकरणकी वृत्तिको सुखरूप मानना श्रुति तथा युक्तिसे विरुद्ध है। श्रुति व्यापक आत्माको ही सुखरूप कहती है और परिच्छिन्न वस्तुकी सुखरूपताका खण्डन करती है। अनुमानरूप युक्तिसे भी वृत्तिकी सुखरूपता सिद्ध नहीं होती क्योंकि जो उत्पत्तिवाला होता है, वह सुखरूप नहीं होता। जैसे दुःख उत्पत्तिवाला होनेसे सुखरूप नहीं है इसी प्रकार अन्तःकरणकी वृत्ति भी उत्पन्न होनेवाली होनेसे सुखरूप नहीं है। (क्रमशः)

श्रीरामकृष्ण परमहंस

(लेखक—स्वामी चिदात्मानन्दजी)

(गतांकसे आगे)

बङ्गाल प्रान्तके हुगली जिलेमें देरीपुर एक ग्राम है। वहां एक सत्यपरायण धर्मनिष्ठ ब्राह्मण-कुल निवास करता था, जो चटर्जी-कुलके नामसे प्रसिद्ध था। इस कुलमें खुदीराम चटर्जी नामका एक साधारण सम्पत्तिवान् ब्राह्मण था और चन्द्रमणि देवी उसकी धर्मपत्नी थी। यही दम्पति श्रीरामकृष्णके जन्मदाता थे। असाधारण महापुरुषोंकी इहलौकिक सम्भूतिका आधार भी साधारण नहीं हुआ करता। श्रीरामकृष्ण जैसी महान् आत्माका इस पृथ्वीपर, इस कुलमें अवतीर्ण होना सूचित करता है कि यह कुल वास्तवमें परम योग्य ही होगा। दोनों पति-पत्नी बड़े धर्मपरायण और भगवद्भक्त थे इनका आचार-व्यवहार बड़ा धार्मिक और सरल था। शास्त्रोंमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास था। पैत्रिक सम्पत्ति पर्याप्त थी, जिससे निष्कण्टक जीवन व्यतीत होता था, परन्तु दिन सदा एकसे नहीं रहते, मनुष्यका जीवन सुख-दुःखका ही बना हुआ है और प्रारब्धानुकूल इनका आना जाना लगा ही रहता है। खुदीरामको भी दुःखका सामना करना पड़ा। उस ग्रामका एक मुख्य धनी जमींदार बड़े ही क्रूर स्वभावका और मदोन्मत्त था। 'प्रभुता पाय काहि मद नाहीं।' किसी प्रकार भी अन्यायसे व्यवहार करनेमें उसे किञ्चित् मात्र भी संकोच न था। उसने एक झूठे मुकद्दमेमें खुदीरामसे गवाही देनेको कहा। यह बेचारे बड़े संकटमें पड़े। गवाही देते हैं तो असत्य आचरणसे आत्महनन तथा महापाप होता है और नहीं देते तो यह डर लगा है कि वह ग्राममें चैनसे कभी रहने नहीं देगा। सत्यपर आरूढ़ पुरुष जगत्के नाशवान् पदार्थों पर इतना अचल मोह नहीं रखते, जितना धर्मपर रखते हैं। अतएव धर्मात्मा खुदीरामने जमींदारके उस अन्यायपूर्ण कर्ममें सहयोग देना अनुचित समझ साहसपूर्वक साफ इन्कार कर दिया। मदोन्मत्त और अनीतिपरायण धनी जमींदार खुदीरामके इस साहसको कैसे सहन कर सकता था, उसने निरपराधी ब्राह्मणको एक झूठे मामलेमें फंसाकर अदालतके चक्करमें डाल उसका सर्वनाश कर दिया। खुदीरामकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी, यहां तक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि रहनेको एक झोंपड़ी तक न बची। परन्तु धर्म-पर आरूढ़ और अपने इष्टदेव भगवान् श्रीराम-चन्द्रपर पूरा भरोसा रखनेवाले खुदीरामने सम्पत्तिके नाशकी कुछ भी परवा न की और भगवान्की इच्छा शिरोधार्य कर निकटके एक ग्राम कमारपूकुरकी ओर प्रस्थान किया। वहां उनके एक मित्रने उन्हें रहनेको एक झोंपड़ी और निर्वाहके लिये थोड़ी सी जमीन दे दी। इससे वह खेती करके एक समय भोजन पा लेते थे।

इस दुर्घटनासे खुदीरामको जगत्के पदार्थों-पर और भी अधिक अरुचि बढ़ गयी। अब वह अपना बहुत-सा समय भगवान्के आराधनमें ही बिताने लगे। इस समय इनके एक रामकुमार नामक पुत्र और एक कन्या थी। थोड़ी सी भूमिसे जो अन्न प्राप्त होता, उससे एक ही समय भोजन कर सन्तोषी ब्राह्मण ईश्वरको धन्यवाद देते थे। खुदीरामका तो अधिक समय भगवद्भजनमें ही बीतता था, कभी कभी तो वह ऐसे तल्लीन हो जाते कि सारा दिन ही बीत जाता। चन्द्रमणि गृहस्थके काममें लगी रहती, पति और सन्तानकी सेवाके लिये उनके भोजनादिका प्रबन्ध करती रहती थी। चन्द्रमणि साक्षात् देवी थी। पातिव्रत्य, दया और उदारताकी मानो जीवन्त मूर्ति ही थी। पतिदेवकी ईश्वर-भावनासे तन-मनसे सदा सेवा करती। कोई भूखा प्यासा घरसे निराश होकर नहीं जाता, जो कुछ भी रूखा-सूखा अन्न घरमें होता उसीसे उसका सत्कार करके अपनेको धन्य मानती। स्वयं निरा-हार रह जाती, परन्तु अन्न रहते भिक्षार्थीको निराश करना वह सहन नहीं कर सकती थी। उसे किसी वस्तुकी लालसा न थी, सदैव निस्पृहभाव रखती थी। चन्द्रमणिका हृदय इतना विशाल था कि ग्रामके बालकोंको वह अपनी सन्तानके तुल्य समझती और सभी गांवके रहनेवालोंको अपने बन्धु-बान्धव मानती थी। ग्रामकी स्त्रियां अपने सब कामोंमें उससे परामर्श लेतीं और सब कठिनाइयोंमें उससे सहायता और सान्त्वना पातीं। सरलता, निष्कपटता और सत्यपरायणता ही उसके आभूषण थे। पति-पत्नीके ऐसे सद्भावोंसे यह परिवार ग्रामभरमें सबका प्रेम-पात्र और माननीय बन गया था।

कमारपूकुरमें रहते छः वर्ष बीत गये। खुदीराम-ने लड़के, लड़कीके विवाह भी कर दिये। रामकुमार संस्कृत पढ़कर विद्वान् हो गया और पूजा-पाठसे कुछ धन उपार्जन करने लगा। उसकी कमाईसे कुटुम्बका निर्वाह सुख-पूर्वक होने लगा। रामकुमारकी सहायतासे खुदीरामके कुटुम्ब-पालनका भार हल्का हो गया। इस कारण अब वह अपना सभी समय भगवद्भजनमें ही बिताने लगे, श्रीराममें उनकी श्रद्धा और प्रेम दिनों दिन बढ़ता गया। कभी कभी तो वह भगवत्-चिन्तनके आनन्दमें तल्लीन हो जाया करते थे। अब उनकी इच्छा तीर्थयात्रा करनेकी हुई। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि ऋषि-मुनियोंके पदार्पणसे तीर्थ भूमि पवित्र हो गयी है। शास्त्रोंने भी तीर्थोंकी बहुत महिमा वर्णन की है इस कारण वहां जानेसे भगवान्के दर्शन होना सुलभ है। इस विचारसे उन्होंने सन् १८२४ ई० में रामेश्वरकी यात्राके लिये प्रस्थान किया। अपने इष्ट-देव भगवान् श्रीरामचन्द्र-के लंका जाते समय शिव-पूजन करनेके कारण इस तीर्थमें खुदीरामकी अत्यन्त श्रद्धा थी। रास्तेमें जगह जगह अन्यान्य तीर्थोंके दर्शन करते हुए १५०० मीलकी पैदल यात्रा रामेश्वर तक कर लगभग एक वर्षमें खुदीराम सकुशल अपने घर वापिस आये, इस यात्राके एकवर्ष पीछे एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम रामेश्वर रक्खा गया। ग्यारह वर्ष पीछे उनकी इच्छा पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये गया जानेकी हुई। यद्यपि उनकी आयु अब ६० वर्षके करीब हो गयी थी परन्तु उत्साहपूर्वक पैदल चलकर दो सौ मीलकी यात्रा करनेके अभिप्रायसे घरसे चल पड़े। गया पहुंचकर महीनेभर वहां रहकर शास्त्र-विधिके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुसार समस्त पितृ-कर्म सम्पन्न किया। इससे उन्हें बड़ा आनन्द और सन्तोष हुआ। पितरोंको तृप्त करनेसे उन्होंने अपने जीवनको सार्थक समझा। जिन परमात्माकी कृपासे यह शुभ कर्म सम्पन्न हुआ, उनको बार बार धन्यवाद देने लगे। रात्रिको उन्हें एक अद्भुत स्वप्न दिखायी दिया, स्वप्नमें उन्होंने देखा कि वह भगवान् गदाधर (विष्णु) के मन्दिरमें बैठे हैं और उनके सामने उनके पितर बड़े आनन्दसे उनके द्वारा समर्पित अन्नका भोजन कर रहे हैं। इतनेमें सारा मन्दिर अपूर्व ज्योतिसे जगमगा उठा और अकस्मात् भगवान् श्रीकृष्णकी परम मनोहर छबि उन्हें दिखायी पड़ी। खुदीराम यह दिव्य दृश्य देखकर विस्मित हो गये और अत्यन्त प्रेमसे उनके चरणोंमें प्रणाम किया। भगवान् बोले कि 'हे महाभाग! तेरे भक्तिभावसे मैं अति प्रसन्न हूं, इसलिये तेरे घरमें जगत्के हितार्थ जन्म लूंगा।" खुदीराम यह सुन अवाक् रह गये और हाथ जोड़कर कहने लगे 'भगवन्! मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं, मेरे घरमें तुम्हारी सेवा-सुश्रूषाके योग्य कुछ भी सामग्री नहीं है, भगवान्ने कहा कि "तू इस बातकी चिन्ता न कर।" प्रातःकाल जागनेपर खुदीराम परम आनन्दमें विभोर हो गये और उन्हें यह निश्चय हो गया कि भगवान् मेरे घर अवतीर्ण होकर हमारे कुलको पवित्र करेंगे। इधर चन्द्रमणिको भी विचित्र दर्शन होते थे। एक दिन वह मन्दिरमें गयी और भगवान्के दर्शन करने लगी कि अकस्मात् मूर्ति दिव्य ज्योतिर्मयी हो गयी और एक अपूर्व प्रकाशने उसे आच्छादित कर लिया। उसका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया और वह बेसुध हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। लोगोंने उसे उठाकर घर पहुंचा दिया। जब होशमें आयी तो उसने अपने हृदयमें अद्भुत पवित्रता और आनन्दका अनुभव किया। खुदीरामने घर लौटकर अपनी भार्यासे गयामें भगवत्-दर्शन होनेका सारा वृत्तान्त कह सुनाया और चन्द्रमणिने भी इधरकी सब घटना पतिसे कह दी। दम्पतिको अब यह पूर्ण विश्वास हो गया कि भगवान् अवश्य हमारे कुलको पवित्र करेंगे।

इस घटनाके उपरान्त पति-पत्नी दोनों अपने अपने नित्य-कर्ममें लग गये। खुदीराम स्वाध्याय और भगवत्-पूजामें और चन्द्रमणि अपने गृहकार्यमें आनन्द-मग्न होकर समय बिताने लगे। कुछ समय बाद सन् १८३६ के फरवरी मासकी १८ तारीखको चन्द्रमणिके पुत्र उत्पन्न हुआ। बालकका जन्म-लग्न विचारनेसे खुदीरामको वह मुहूर्त बहुत उत्तम जान पड़ा, जिससे उन्हें बालकका भविष्य अत्यन्त प्रतिभाशाली प्रतीत हुआ। अन्य विख्यात ज्योतिषियोंने भी यही निश्चय किया कि निःसन्देह बालक कोई असाधारण व्यक्ति है। बालकका नाम गदाधर रक्खा गया। गदाधरके जन्मके सम्बन्धमें बहुत-सी दन्तकथायें प्रचलित हैं, वह कहाँ तक सच हैं यह निश्चय करना कठिन है। गदाधर बचपनसे ही सबको अति प्रिय लगता था। जो उसे देखता वही प्यार करता। इसका शिशु-काल विचित्र था। एक समय जब वह केवल छः सात वर्षका था, बच्चोंके साथ गांवके बाहर घूम रहा था इतनेमें उसने नीलाकाशमें सुन्दर कुंजोंकी कतार उड़ती देखी। कुंज पक्षि प्रायः एक लम्बी टेढ़ी कतारमें मालाकी तरह इकट्ठे होकर उड़ा करते हैं। मालाकार श्वेतवर्ण पक्षी-समूहको नीलाकाशमें उड़ते देखकर गदाधरको वनमालाधारी श्रीकृष्णका स्मरण हो आया और वह समाधि-अवस्थामें बाह्यज्ञानशून्य हो कर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बचपनसे ही उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। जो बात एक बार सुन लेता वह कभी न भूलता। शास्त्रोंका श्रवण उसे सदा प्रिय था और साधुओंसे तो उसे बड़ा ही प्रेम था। जहां कहीं शास्त्रकथा या साधु-समागम होता, गदाधर अवश्य वहां जाता और सत्सगमें घण्टों बैठा रहता। कभी कभी साधुओंसे ऐसी बातें करता कि वे लोग चकित हो जाते और आशीर्वाद देते। बंगालमें गायक-मण्डली जिसे, 'यात्रादल' कहते हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें कीर्तन करते फिरा करती हैं। ऐसी मण्डलियां कुमारपूकुरमें भी आया करती थीं। जब कभी कोई मण्डली वहां आती तो गदाधर जरूर वहां पहुंचता और बड़े ध्यानसे उनका गान तथा हावभाव देखता रहता, फिर घर आकर उसी ढंगसे अनुकरणकर गाता, जिससे सुननेवाले विस्मित हो जाते।

सन् १८३६ में चन्द्रमणिके एक कन्या पैदा हुई, जिसका नाम 'सर्वमंगला' रक्खा गया। लगभग ५ वर्षकी अवस्थामें गदाधरको पाठशालामें भरती किया गया। वहां वह सहजहीमें अपने सहपाठी बालकोंका तथा गुरुजीका प्रेमपात्र बन गया। उसका ढंग ही कुछ ऐसा था कि कोई उससे प्रेम किये बिना नहीं रह सकता था। स्मृति ऐसी अद्भुत थी कि एक बार पढ़ने सुननेसेही कंठस्थ कर लेता था। उसके पिता चाहते थे कि गदाधर अच्छी तरह विद्योपार्जनकर अपनी आजीविकाके निमित्त धन कमाने लगे। परन्तु वह जगत्में इस कार्यके लिये थोड़ेही आया था कि केवल उदर-पूर्ति करनेमें ही जीवन नष्ट कर दे। उसे जगत्का कल्याण अभीष्ट था, जगद्गुरु बनकर संसारके माया-मोहमें फंसे हुए जीवोंका उद्धार करना था। इसलिये ऐसी विद्यासे उसे कुछ प्रयोजन नहीं था जो केवल सांसारिक विषयोंका ज्ञान दे सकती है। वह उस परमा विद्याका इच्छुक था, जिससे तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्ति होती है। इस कारण गदाधरने कभी आजीविका चलानेवाली विद्याकी ओर रुचि नहीं की। वह प्राचीन सत् शास्त्रोंमें वर्णित महापुरुषोंके चरित्रोंको ध्यानपूर्वक पढ़ता सुनता था। जब कभी वह इन कथाओंको गांवके रहनेवाले लोगोंको पढ़कर सुनाता तो अत्यन्त प्रेममें मग्न होकर तन्मय हो जाता और अपने व्यक्तित्वको भी भूल जाता। सुननेवालोंको इस नन्हें बालकके भावोंपर बड़ा आश्चर्य होता। वह सदा निर्भय रहता था। दूसरे बालक जहां जानेसे डरते वहां भी वह निडर होकर चला जाता।

"होनहार बिरवानके होत चीकने पात" गदाधर बचपनसे ही अद्भुत चरित्रका बालक था, असाधारण प्रकृति और प्रिय-दर्शन होनेसे वह सभीके प्रेमकी सामग्री बन गया था।

गदाधर ७ वर्षका हुआ ही था कि एक शोक-जनक दुर्घटनाने सारे चटर्जी-परिवारको दुःखित कर दिया। सन् १८४३ में गदाधरके पिताको उदर-रोगने सताया, उनको भयानक संग्रहणी रोग हो गया, उस रोगने उनके प्राण हरण कर लिये! अन्त समय अपने इष्टदेव श्रीरघुवीरका पवित्र नाम उच्चारण करते करते वे इस असार संसारसे विदा हो गये। इस दैवी आपत्तिसे शोकाकुल तो सारा ही कुटुम्ब था परन्तु चन्द्रमणिके हृदयमें जो वेदना थी उसका तो वर्णन नहीं हो सकता। हिन्दू-महिला-के लिये एक पति ही सर्वस्व है, वही इष्टदेव है, वही जीवन-आधार है। हिन्दू-स्त्री बिना पतिके अपने शरीरको जीवन ही नहीं समझती है। चन्द्रमणिने समस्त सुखोंको और वस्त्राभूषणोंको, जो कुछ भी थोड़े बहुत उसके पास थे, तिलाञ्जलि दे दी और निरन्तर भगवत्-स्मरणमें अपना शेष जीवन बिताने लगी। वह यही बाट देखती रहती कि शरीर छूटे तो प्रियतमसे मिलन हो। खुदीरामके स्वर्गवास होनेसे अब कुटुम्ब-पालनका सारा भार रामकुमार-के सिर आ पड़ा। अपनी विधवा माताकी सेवा और भाइयोंको पढ़ा लिखाकर योग्य बनाना उसी-पर निर्भर था। गदाधरके चित्तमें भी पिताके देहान्तसे बड़ा शोक हुआ। वह कुछ अनमनासा रहने लगा और प्रायः श्मशानमें या कहीं एकान्त स्थानमें जाकर ध्यान-मग्न रहने लगा। माताको शोकाकुल देखकर अब वह बहुत समय उसके पास ही रहा करता था। इससे चन्द्रमणिको बहुत धैर्य और सन्तोष मिलता था।

गदाधरकी आयु अब ९ वर्षकी हो गयी। इस-लिये रामकुमारने उसका उपनयन-संस्कार करना उचित समझकर प्रबन्ध करना शुरू किया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मण-बालकके लिये इस आयुमें यज्ञोपवीत-संस्कार होना शास्त्रोंके आदेशानुसार परमावश्यक है। मित्रोंकी सहायतासे सब योग्य प्रबन्ध हो गया। संस्कार समाप्त होनेपर बालकको अपनी जातिकी किसी वृद्धा स्त्रीसे पहिली भिक्षा माँगनी होती है, इसलिये गदाधरसे भी पूछा गया कि तू किससे भिक्षा मांगेगा। उसने एक लुहारकी स्त्री 'धनी' का नाम ले दिया। ब्राह्मण-जातिके नियम-विरुद्ध इस बातको कौन मानने लगा था? किसीने गदाधरकी बात स्वीकार नहीं की। यद्यपि 'धनी' अपने सद्व्यवहार और धर्मपरायणताके कारण ग्राममें सब लोगोंको माननीय थी, परन्तु शूद्रा होनेसे ब्राह्मणोंने गदाधरसे यह कह दिया कि तुम उससे भिक्षा नहीं ले सकते। इसपर गदाधर रूठ कर कहीं जा छिपा और उसने अन्न-जल त्याग दिया।

उसका यह हठ देख रामकुमारने सान्त्वना देकर उसे सन्तुष्ट करनेके लिये उसकी बात स्वीकार कर ली। इस घटनासे गदाधरके उदारभाव और विशाल हृदयका परिचय मिलता है जो उसके भविष्य जीवनमें परिपक्व होता गया। उपनयन-संस्कारके बाद अब गदाधरको कुलके इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रकी पूजा करनेका अधिकार मिल गया। इससे वह बड़े चावसे प्रेमपूर्वक भगवान्की पूजा करने लगा। उसके भावमें वह पाषाण-विग्रह नहीं था। वह उनको साक्षात् सृष्टिके कर्ता, पालक और संहारकर्ता परमेश्वर ही मानता था। घंटों उनके ध्यानमें बैठा रहता। प्रेमवश कई बार उसे भगवान्ने दिव्य दर्शन भी दिये।

(क्रमशः)

आत्मप्रभाकर

(१)

आत्म-प्रभाकर सुभग सत्यका कल आलोक निकर है।
पर-भृत-नीति समुन्नति पार्थिव अंधकारका घर है॥
दोनोंमें दिन निशिका, अम्बर अवनीका अन्तर है।
एक सुधा-सुख-सिन्धु, दूसरा तो विष वारिधि-त्रर है॥

(२)

वि-भवके लिये व्याकुल जीवन आत्माकी न प्रकृति है।
तरु तोयद सा त्याग मनोहर उसकी शुद्ध सुगति है॥
देश-काल-पात्रादि-भेद मायाकी मारन-रति है।
विश्व-समुन्नति शुचितम उसकी शिव-संकल्प सुमति है।

(३)

वह अनन्त उद्यान विहारी
मुक्त विहग गायक है।
सदानन्दके अमरलोकका
निर्विकार नायक है॥

जयनारायण झा 'विनीत'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्त-भारती

(लेखक—पं० श्रीतुलसीरामजी शर्मा 'दिनेश')

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

गजेन्द्र-गाथा

दोहा

आर्त्त-भक्तकी शुभ कथा, सुनिये नृपति सुजान ।
विपद समयमें स्वजनकी, लाज रखें भगवान ॥

भगवान ऐसे हैं दयामय, कुछ कहे जाते नहीं,
उनके चरित, अद्भुत, अमित हम पार हैं पाते नहीं ।
कोई सुनावे निज व्यथा वे सर्वदा तैयार हैं,
है काम ही उनका यही, करते सतत उद्धार हैं ॥

हो भक्त भी चाहे न, उनको स्मरण करते ही, जभी,
कारुण्य-रव सुन भग चलें, दुख नष्ट करनेको सभी ।
वह भक्त ही है जो उन्हें सङ्कट समयमें बोल ले,
हरि-ग्रन्थि हैं ऐसी सुगम कोई किसी विध खोल ले ॥

बस, 'हरि' पुकारा चाहिये मानो खड़े ये पास ही,
वे दूर हैं जब तक कि उरमें है नहीं विश्वास ही ।
वे जातिको, धनको, सुविद्या, आयुको, तप-तावको—
कब देखते हैं ? देखते बस एक उरके भावको ॥

जन्मान्तरोंकी भक्तिसे क्षण-भक्ति अति कर मानते,
वे ऊपरी बातें न लेते, भीतरी हैं जानते ।
वे दूर हैं उनके लिये जो दूर उनको मानते,
वे पास हैं उनके खड़े, जो पास उनको जानते ॥

दोहा

इसी नियमकी भूपते ! सुनिये कथा रसाल ।
सुननेसे कल्याण हो, दे हरि-रति-सरि झाल ॥
शोभित सरस सुहावना, गिरि त्रिकूट विख्यात ।
क्षीर-सिन्धुसे जो घिरा, बहती जहां त्रिवात ॥

हैं तीन जिसके स्वर्ण, लोहे, रजतकी शिखरें बड़ीं,
तीनों गुणोंकी मूर्त्तियां प्रत्यक्ष मानो हैं खड़ीं ।
जिनसे प्रकाशित सब दिशाएं, क्षीर निधि शोभित महा
निज झाल-मालासे पयोनिधि चरण-गिरिके धो रहा ॥

द्रुमवर लतादिकसे सकल वह शैल यों छाया हुआ,
ऋतुराज मानो है यहीं पर सैरको आया हुआ ।
शीतल, मधुर, निर्मल सलिल-निर्झर-मधुर ध्वनि प्रतिध्वनि,
होते सुखित हैं कान सुन सुन प्राकृतिक यह रागनी ॥

गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएं, सिद्ध चारण-वर तथा,
गिरि-कन्दराओंमें विहरते मोद-युत हो सर्वथा ।
उनके मधुर संगीतकी ध्वनि गूंजती रहती सदा,
"सुख है यहीं, सुख है यहीं" वीणा यही कहती सदा ॥

मृत श्रृङ्गमें भर प्राण आवें सुन मृदङ्ग सुहावना,
अपना विपक्षी जान केहरि हुंकरे भ्रमसें सना ।
सुर-वाटिकाओंमें विविध बिधिके विहग वर बोलते,
बोली रसीली, कलित कुञ्जोंमें विशेष कलोलते ॥

दोहा

स्वच्छ नीर सर, सरित-तट, शोभित सुन्दर रेत ।
लहराते कुछ दूर पर, हरे हरे नव खेत ॥
सुर-ललना-गणके जहां, करनेसे नित स्नान ।
हुए सुवासित जल पवन, भ्रमते भ्रमर महान ॥

उस ही विशाल त्रिकूट गिरि पर वरुणका शुभ बाग है,
"ऋतुमान" नामक अति सरस, जिसपर विहग अनुराग है ।
फल फूलनेवाले विविध बिधिके विटप उसमें लगे,
अति सौरभित कुसुमित विटप, फल लटकते रसमें पगे ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन्दार, पाटल, पारिजात, अशोक, चम्पा, आम हैं,
कटहल, खजूर, अनार आदिक वृक्ष-फल रसधाम हैं।
अर्जुन, तमाल, प्रियाल, किंशुक, ताल, शाल, विशाल हैं,
वट, बेर, बेल विशेष विहगोंके बने प्रतिपाल हैं॥

ऋतुमानके ही पासमें है एक सरवर अति बड़ा,
मानो यही गिरिका हृदय, क्या क्या न इसमें है पड़ा?
होते बड़े जो लोग हैं, होते हृदय उनके बड़े,
होते विकार बड़े तथा, खुलते प्रयोजनके पड़े॥

उस स्वच्छ सरमें कोकनद, कैरव, सुकञ्ज खिले हुए,
भ्रमते भ्रमर जिनपर सतत मदमत्त, चित्त सिले हुए।
कलकण्ठ खग गणके मधुर स्वरसे सरस परिपूर्ण है,
यह साज कलुपित चित्त धनपति-तुल्य ही सम्पूर्ण है॥

दोहा

चकवा, सारस, हंस वर, कारण्डव खग वृन्द।
उसके निर्मल तीर पर, मना रहे आनन्द॥
माछी फिरती मछलियां, भरे पेंठमें कच्छ।
सरसिरुहोंको छेड़कर, चलें, हिलें वे स्वच्छ॥

सरके किनारे पर सरस कुसुमित सुगन्धित वृक्ष हैं,
जिनके सुमन दृग, घ्राण-इन्द्रिय मोहनेमें दक्ष हैं।
हैं बाँस भी लम्बे अमित, नभ फोड़नेको जा रहे,
फल फूलसे वञ्चित निरे, निज मूर्खता जतला रहे॥

है बेंतका भी गाछ उसका ही अनुज, कोरा कड़ा,
जो फूलता फलता न, पर के दण्ड-साधन-हित खड़ा।
सूका खड़ा है ठूँठ, नीरस व्यक्ति-सा कोई कहीं,
नीरस हृदय सहृदय जनोंमें हैं छटा पाते नहीं॥

मदमत्त गज-पति एक दिन उस ठौर आ पहुँचा कहीं,
छोटे बड़े सब जीव भागे प्राण ले, ठहरे नहीं।
दल-बलसहित गजपति जिधर होता उधर ही राह था,
निर्भय हुआ वह झूमता चलता, न बलका थाह था॥

उसने अनेकों शाखियोंको ठूँठ कर डाला तथा,
जलयुक्त झंझानिल, उपल-तूफान आया हो यथा।
सुनता अरण्ड ही मर्द रव कुछ और सुन पड़ता नहीं,
खग, मृग वहाँ क्या टिक सकें, मृगराजका न पता कहीं॥

दोहा

गजदलने उस विपिनमें, खूब मचाई धूम।
मानो बादल भूमि पर, आज रहे हैं घूम॥
तृषा लगी सरको चले, दलते मलते पत्र।
मानो डौंडी पिट गई, आगे भी सर्वत्र॥

उन हाथियोंके है सिरोंसे सौरभित मद बह रहा,
मंडरा रहीं अलि-मँडलियां, इस दृश्यकी शोभा महा।
गजराजने निज सूंड़ जाकर टेक उस सरमें दिया,
जो साथ थे हाथी-हथिनियां, उन सभीने जल पिया॥

गजराज जल पीकर मुड़ा, जंजीर पगमें जड़ गई,
दुर्दैवकी हा! हा! अचानक दृष्टि उस पर पड़ गई।
अति क्रूर, भीषण ग्राहकी करतूतने यह क्या किया?
गजराजका रस-रंग यों पल एकमें विनसा दिया॥

गज चाहता जलसे निकलना, पर उधर ही जा रहा,
गम्भीर सरवरमें खिंचा, पल कल्प-तुल्य बिता रहा।
गज हो गया बेवश, विकल, बेहाल, बल भूला सभी,
थर थर लगा तन काँपने, यह दुख न देखा था कभी॥

निर्भय, निरंकुश था रमा बनमें हथिनियोंमें सदा,
यह तो अचानक आगई सिरपर भयानक आपदा।
अब तो लगा चिंघाड़ने कोई नहीं सुनता वहां,
है मौतसे पाला पड़ा, साथी वहां पावें कहां?

दोहा

जब आते हैं कष्ट दिन, सब तज देते साथ।
बाल व्याल अपने बनें, सुधा बने विष-क्वाथ॥

गजने विचारा हाय हा! किसकी शरण अब मैं गहूं?
सन्तापकी वेला विकट, इस कालकी किससे कहूं?
है कौन ऐसा जो मुझे थपकी लगा निर्भय करे,
"हे वत्स! मत डर" यों कहे, मेरी महा विपदा हरे॥

अब तो मुझे रक्खे वही जिसका सकल यह खेल है,
हूं अब उसीकी शरण मैं, मम जल चुका बल-तेल है।
"हे नाथ! दीनानाथ! करुणासिन्धु! रक्षक तू अभी,
इस काल मेरा है न कोई, तज चले साथी सभी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेरे बिना भगवान! मेरा अब सहारा क्या रहा?
भगवान! आओ भागकर मैं तो बहुत दुख पा रहा।
मुझ नीचपर जाना नहीं, अपना विरद सम्भालना,
इससे बचा लो फिर भले निज चक्रसे ही मारना॥

जो देख लोगे कर्म मेरे, फिर मुझे आशा नहीं,
हे नाथ! तज दोगे मुझे तो ठौर फिर क्या है कहीं?
मतिमन्द हूं, पशुयोनि हूं, संयम नियमसे हीन हूं,
तन मन मलीन प्रवीन पापी पीन विषयाधीन हूं॥

दोहा

हा! हा! मुझको दुःख है, किये सदा दुष्कर्म।
जीव सताये व्यर्थ ही, सो ये फले अधर्म॥

हे नाथ! नर, सुर, मुनि सदा तो तारते ही आप हैं,
यह नीच पशु भी तार दो, मेरे फले बहु पाप हैं।
कामादि छः छः ग्राह-गणसे निज बचाते भक्त हो,
इस एकसे मुझको बचा लो, आप भक्तासक्त हो॥

मैं यह नहीं कहता कि मैं हूं भक्त सच्चा आपका,
वह भक्त कैसे हो भला, पूरित घड़ा जो पापका?
इस 'भक्त' पावन नामकी महिमा घटाता मैं नहीं,
सच्चा कहाता भक्त जब, सुखमें शरण आता कहीं॥

दुख-वायुका प्रेरा हुआ तिनका पदोंमें आपड़ा,
इसको उठाओ नाथ! अपना हाथ फैलाकर बड़ा।
तुम हो दयाके सिन्धु, दीनानाथ! मैं दयनीय हूं,
मैं भक्त तो बेशक नहीं, पर भीत, आर्त्त, त्वदीय हूं।

नीचातिनीच मलीनके भी पाप विनसाना सदा,
है शरण आयेको तुम्हारा नियम, अपनाना सदा।
हे नाथ! अब अवसर नहीं है मत विलम्ब करो वृथा,
संसार गायेगा तुम्हारी यह दयावाली कथा॥

दोहा

नाथ! तुम्हारे नामके, सँगमें मेरा काम।
बनता है लीजे बना, तुमको अमित प्रणाम॥
प्रसता है गजको गिरह, होता है अन्याय।
चर्चा होगी आपकी, जो न करोगे न्याय॥

यह लो, अजी! यह लो, प्रभो! मैं तो चला हूं जा रहा,
तुमने दयाका काम क्या यह आजसे त्यागा महा?

यह जो तुम्हारा नाम दीनानाथ, करुणासिन्धु है
बस, आजसे इस नामपर हे नाथ! लगता बिन्दु है

या देखकर मुझको महापापी, कहीं घबरा गये
या और दीनोंके कहींसे पत्र दुखके आ गये
हे नाथ! जो अच्छा तुम्हें मुझको वही स्वीकार है
करता नमन अन्तिम तुम्हें यह दास बारम्बार है

हे नाथ! देनेको न मेरे पास कुछ उपहार है
क्या इसलिये मेरी सुनी प्रभुने न दुःख–पुकार
दृग-नीरको मन-पात्रमें भर, अर्घ्य हरिको दे दिया
गजराजने ऐसे समयमें यज्ञ यह मानों किया

फिर पद्मिने ले पद्म हरि-पद-पद्ममें अर्पित किया
करिने यथा अपनी व्यथा लिख पत्र हरिको दे दिया
उठकर भगे भगवान अपना याम भी भूले अहा
निज बानपर भूले नहीं—गज मान जन अपना महा

दोहा

द्विरद रूपमें निज विरद, शीघ्र बचाने हेत।
जन-धीरद, नीरद-वपुष, भगे भीड़के खेत॥

"ना" निकला था वदनसे, बाकी पड़ा "थ" कार।
मकर-शीश हर ले गई, प्रखर चक्रकी धार॥
हरिकी करुणा-दृष्टिसे, कटे हस्तिके फन्द।
जलसे निकला द्विरद वर, माने अति आनन्द॥

जो जाते हरिकी शरण, न वे दुख पाते,
जो जाते रोते वही विहँसते आते।
जो जाते खाली हाथ लदे वे आते,
जो जाते हरिकी शरण न, वे पछताते

किस किसने जाकर शरण न क्या कुछ पाया,
जब हरि ही रीझें, छिपे कहां फिर माया?
क्या ध्रुवने रखा हमें नहीं बतलाया?
क्या भक्तराजने यों ही कष्ट उठाया?

इस गजने भी तो यही बात बतलाई,
हरि हैं न देखते पापोंकी अधिकाई।
जब हरिके उरमें झलक दयाकी आई,
हरि करते रजसे मेरु, मेरुसे राई॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम धन्य धन्य गजराज भक्तवर नामी,
दृग-जलसे यों पिघलाये अन्तर्यामी।
कहाँ तुम्हारा नीच गात अति कामी?
कहाँ विश्वके नाथ, गरुड़के गामी?

दोहा

यह सब महिमा प्रेमकी, कनक, राँगका मेल।
कौन समझ सकता अहो! हरिके अद्भुत खेल॥
जो जन इस शुभ गाथको, पढ़ें प्रेमके साथ।
सांसारिक सङ्कट कटें, रीझें श्रीयदुनाथ॥

मन्त्रयोग

(लेखक—स्वामी श्रीविज्ञानहंसजी)
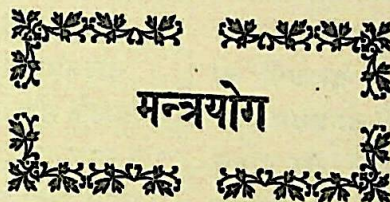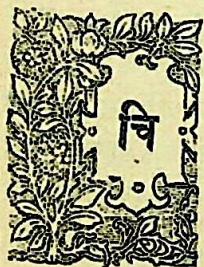
चित्त-वृत्तियोंका निरोध करके आत्म-साक्षात्कार-लाभ तथा श्रीभगवान्‌की सन्निधि प्राप्त करनेके लिये जितनी साधन-प्रणालियां हैं, उन सबको चार भागोंमें विभक्त किया गया है और वे ही उपाय योग क्रियारूपसे प्रसिद्ध हैं, जैसा योग-तत्त्वोपनिषद्‌में कहा गया है।

योगो हि बहुधा ब्रह्मन् भिद्यते व्यवहारतः।
मन्त्रयोगो लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगकः॥

योगके क्रिया-सिद्धांश चार भागमें विभक्त हैं—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग। इन चारोंमें अधिकारके विचारानुसार मन्त्रयोग प्रथम श्रेणीका, हठयोग द्वितीय श्रेणीका, लययोग तृतीय श्रेणीका और राजयोग चतुर्थ श्रेणीका है।

मन्त्रयोगमें स्थूल मूर्ति और मन्त्र-सहायताकी प्रधानता है। हठयोग-विधिमें ज्योतिर्ध्यानकी प्रधानता है। लययोगमें विन्दुध्यानकी और राजयोगमें ब्रह्मध्यानका प्राधान्य है।

अति सूक्ष्म इन्द्रियातीत परम तत्त्वको प्राप्त करनेके लिये मायाबद्ध चित्त एकाएक अधिकारयुक्त नहीं हो सकता। इसलिये मन्त्रयोग, हठयोग, और लययोगके साधनद्वारा धीरे धीरे स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर चित्तवृत्तिको लगाकर अन्तमें राजयोगके साधनद्वारा अद्वितीय निराकार देश-कालसे अपरिच्छिन्न ब्रह्मसत्तामें जीवात्माको विलीन किया जाता है।

यह दृश्यमान जगत् भावका ही विकासमात्र है, प्रत्येक भाव ही नाम और रूपके द्वारा संसारमें प्रकट होता है। जिसके चित्तमें जिस प्रकारका भाव होगा वह उसीके अनुसार शब्दके द्वारा या रूप-कल्पनाके द्वारा उसी दृश्यभावको प्रकट करेगा। प्रेमका भाव प्रेममूलक शब्द और प्रेममयी मूर्तिके द्वारा संसारमें प्रकट होता है। इसी तरह जिस किसी भी प्रकारका भाव होगा उसी भावके प्रकाशक शब्द-रूपद्वारा वह भाव प्रकाशित होगा। इससे यही निश्चय होता है कि जिस तरह व्यष्टि-जगत्‌में प्रत्येक भावका विकाशक नाम और रूप है, उसी तरह समष्टि-जगत्‌में भी परमात्माके चित्तकी सिसृक्षा (सृष्टिकी इच्छा) का भाव ही नामरूपात्मक जगत् भावसे प्रकट होता है। जगत् प्रसव करनेवाली सिसृक्षामूलिका उनकी यह इच्छाशक्ति ही माया है। यह माया ही नामरूप-मयी होकर समस्त दृश्य संसारको प्रकट करती है।

परमात्मामें नाम-रूप-मयी मायाकी उपाधि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होनेसे ही दृश्य जगत्का विकास होता है, इससे यही सिद्धान्त निश्चय होता है कि परमात्मासे भाव, भावसे नामरूप और उसका विकार तथा विलासमय यह संसार है, इसलिये जिस क्रमके अनुसार सृष्टि हुई है, उसी क्रमके अनुसार विपरीत मार्गसे उसका लय भी होगा। यह निश्चय है। अर्थात् परमात्मासे भाव, और भावसे नामरूपद्वारा जब सृष्टि हुई है, जिससे समस्त जीव बन्धनमें आ गये हैं तो यदि मुक्ति लाभ करना है तो प्रथम नाम-रूपका आश्रय लेकर नामरूपसे भावमें और भावसे भावग्राही परमात्मामें चित्तवृत्तिका लय होनेपर मुक्ति होगी। इसलिये नारदादि महर्षियोंने नाम-रूपके अवलम्बनसे ही साधनकी विधियां बतलायी हैं। उन्हीं विधियोंका नाम मन्त्रयोग है।

अविद्यासे जकड़े हुए मनुष्योंके चित्तमें वैषयिक भावका प्राधान्य होनेके कारण वे लोग सदा ही अपने अपने भावोंके अनुकूल संसारके लौकिक नाम और रूपमें फँसे रहते हैं। इसलिये उनके चित्तसे लौकिक भावोंको दूर करके दिव्य भावोंका विकास करनेके लिये लौकिक नाम और रूपके बदले दिव्य नाम और रूपकी साधन-विधि मन्त्र-योगमें बतलायी गयी है। मन्त्र-योगमें स्थूल मूर्तिका पूजन और ध्यान हुआ करता है—

परम करुणामय महर्षियोंने मन्दबुद्धि, मायाबद्ध जीवोंकी वैषयिक तृष्णाको घटाकर साधकको भगवद्भावमें निमग्न करनेके लिये निराकार सर्व-शक्तिमान् परमेश्वरकी अनन्त लीला-विलासमयी भावमयी मूर्तिका विधान, साधनकी प्रथम दशामें मन्त्रयोगके अधिकारियोंके लिये किया है। श्रीभगवान्की लीलामयी, भावमयी मधुर मूर्तिमें चित्तको अर्पण करके उनके किसी अङ्गमें अथवा सर्वाङ्गमें प्रेमके द्वारा चित्तको आसक्त कर देनेसे विषयासक्त चित्त धीरे धीरे संसारके रूपोंको छोड़ देगा और सांसारिक काम, मोहादि वृत्तियां नष्ट होकर श्रीभगवान्के रूपमें आसक्ति बढ़ जानेसे वह केवल श्रद्धा, भक्ति और सात्त्विक प्रेम ही प्राप्त करेगा। इस तरहसे आध्यात्मिक उन्नति लाभ करते हुए पूर्ण-वैराग्यकी प्राप्ति होनेपर जब उसकी नामरूपासक्ति बिल्कुल छूट जायगी, तब वह राजयोगकथित रूपरहित अद्वितीय सर्वव्यापी परब्रह्म भावमें निमग्न होकर निःश्रेयसपद प्राप्त करेगा। यही मूर्तिपूजा या ध्यानका प्रयोजन है।

उस समय भक्तके एकाग्र चित्तमें यदि भावग्राही भगवान्के भावानुसार प्रकाशित रूपके दर्शनके लिये तीव्र लालसा या संवेग उत्पन्न हो तो सर्वशक्तिमान् भगवान् उन्हीं भावोंके अनुसार दिव्य स्थूल मूर्ति धारण करके भक्तको दर्शन भी देते हैं। इस तरह श्रीभगवान्की मधुर मूर्तिका दर्शन करके साधकके नेत्र और मन परितृप्त और प्रफुल्लित हो जाते हैं वह उस रूपको देखते देखते आनन्दमें मग्न होकर रूपके द्वारा भगवद्भावमें तन्मय होता हुआ भाव-समाधिको प्राप्त करता है। मन्त्रयोगकी यह भाव-समाधि है।

उस समय श्रीभगवान्की भावमयी मूर्ति अत्यन्त प्रेमके साथ ध्यान-मग्न होकर मन-प्राण समर्पण कर देनेसे भक्तका हृदय-कमल खिल जाता है। समस्त शरीर रोमाञ्चयुक्त हो जाता है, दरदरि धारासे प्रेमाश्रु बहने लगते हैं। भक्त उपासकके समस्त सद्वृत्तियां असंख्य मन्दाकिनीका रू धारण कर श्रीभगवान्के आनन्द-समुद्रकी ओ प्रबल वेगसे प्रवाहित होने लगती हैं। उनके चित्त समस्त मलिनता प्रेमाश्रुओंके द्वारा धुलकर शु हो जाती है। समस्त अज्ञानान्धकार सूर्यके उदय रात्रिके अन्धकारकी तरह भगवन्मूर्तिकी तेजोम किरण-छटासे पूर्णरूपसे नाशको प्राप्त हो जाता है उपासक संसारके क्षणभङ्गुर समस्त विष सम्बन्धी रूपोंको पूर्णरूपसे भूलकर अनन्त-रूपाधा श्रीभगवान्के रूप-सागरमें सदाके लिये डूब जाता है उसकी विषय-तृष्णा भगवान्के प्रेम-सुधाका प करके चिरकालके लिये निवृत्त हो जाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रेमभरी दृष्टिसे चकोरकी तरह श्रीभगवान्की आनन्दमयी रूप-सुधाका आस्वादन करते करते उपासक ध्याता-ध्यान-ध्येयरूपी-त्रिपुटीको पार करके उसी रूपमें तन्मय हो भावसमाधिको प्राप्त कर लेता है। इस तरह दिव्य भावमय आनन्दमय रूप-सुधा-आस्वादनकी सौभाग्य प्राप्ति साकार-मूर्ति-पूजन-परायण साधकको ही प्राप्त हो सकती है।

इसप्रकार श्रीभगवान्के दिव्य रूपकी सहायतासे किस तरह भावसमाधिकी प्राप्ति और उन्नति होती है, इस बातका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया गया। अब दिव्य नामकी सहायतासे कैसे उन्नति होती है, सो दिखलाया जाता है।

शास्त्रमें मन्त्रको दिव्यनाम कहा गया है क्योंकि भगवान्के दिव्यभावोंके अनुसार बनी हुई मूर्ति जैसे दिव्यरूप कहलाती हैं, उसीप्रकार मन्त्र भी श्रीभगवान्के दिव्य राज्यके स्पन्दजनित शब्द होनेके कारण दिव्यनाम कहलाते हैं।

जहां कुछ कार्य होगा वहां कम्पन अवश्य होगा और जहां कम्पन होगा वहां शब्द भी अवश्य ही होगा। सृष्टि-क्रिया भी एक प्रकारका कार्य है इसलिये सृष्टि-कार्यके समय प्रकृतिके प्रथम स्पन्द (चाञ्चल्य) द्वारा जो शब्द उत्पन्न होता है वही ओंकार प्रणव है। सत्त्व रज तम तीनोंकी साम्यावस्थासे अब वैषम्यावस्था होना प्रारम्भ हुआ, उस समय सबसे प्रथम जो हिल्लोल हुआ (अर्थात् जिस समय तीनों गुण एक साथ स्पन्दित हुए) उस हिल्लोलकी ध्वनि ही ओंकार है। जिस तरह साम्यावस्थासे सम्बन्ध रखनेवाली प्रकृतिका शब्द ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक ओंकार है, उसीतरह वैषम्यावस्थाको प्राप्त प्रकृतिके भी नाना शब्द हैं। वही नाना शब्द उपासनाओंके अनेक बीजमन्त्र हैं।

इसलिये ओंकारको वेदमें उद्गीथ कहा है 'ओंकार' इस शब्दको मुख्य रखकर ही भगवान्की प्रस्तुति होती है। इसलिये ओंकारका नाम उद्गीथ है अतएव ओंकार ईश्वरका वाचक है। ओंकारका जप और ईश्वरकी भावना करनेसे ईश्वरकी प्राप्ति और विघ्नोंका नाश होता है, जैसा कि पतञ्जलिजीने कहा है—

> तस्य वाचकः प्रणवः।
> तज्जपस्तदर्थभावनम्।
> ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।

जिसतरह किसीका प्रिय नाम लेकर पुकारनेसे वह प्रसन्न होकर उत्तर देता है उसीतरह श्रीभगवान्का प्रियनाम ओंकार उच्चारण करके उनको बुलानेसे श्रीभगवान् भी प्रसन्न होकर दर्शन देते हैं। ओंकार ईश्वरका मन्त्र है, इसका विशेष वर्णन कभी ओंकार-महिमाके वर्णन-प्रसंगमें दिखाया जा सकता है। इस समय यहां इसके कहनेका मतलब इतना ही है कि उपर्युक्त वर्णनके अनुसार शब्दराज्यमें ओंकारके साथ ईश्वरका और अन्यान्य मन्त्रोंके साथ अन्यान्य देवताओंका अधिदैव सम्बन्ध है, जिससे ओंकारके जपसे ईश्वर और अन्यान्य मन्त्रोंके जपसे तत्तद्देवता प्रसन्न होते हैं।

प्रकृतिके प्रथम स्पन्दनमें ॐ बीज उत्पन्न हुआ इसके बाद द्वितीय स्पन्दनमें अष्टप्रकृतिके अनुसार आठ बीजमन्त्रोंकी उत्पत्ति हुई। भूमि, जल, अग्नि वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, परमात्माकी मायाशक्ति इन आठ भागोंमें विभक्त है। इसीतरह आठ प्रकृति आठ स्पन्दानुसार आठ बीजमन्त्र हैं। इसके बाद प्रकृतिके भिन्न भिन्न अङ्गोंमें अनेक प्रकारके स्पन्दन होनेसे तदनुसार अनेक मन्त्र उत्पन्न होते हैं। इससे यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि जिस तरह ब्रह्माण्ड-प्रकृतिके स्पन्दजनित शब्द ओंकारके साथ ब्रह्माण्ड-नियन्ता ईश्वरका अधिदैव-सम्बन्ध होनेसे ॐकार उनका मन्त्र है, उसी तरह प्रकृतिके जिस विभागके कम्पनसे जो मन्त्र उत्पन्न होंगे, उस विभागके अधिष्ठाता देव और देवी गणोंके साथ उन उन मन्त्रोंका अधिदैव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्ध रहनेसे उन उन देव और देवियोंके साधनके लिये महर्षियोंने प्रकृतिके भिन्न भिन्न विभागोंमें संयम करके उन उन विभागोंपर अधिष्ठात्री देवताओंकी मूर्तियां बताई है, उसी तरह प्रकृतिके उन विभागोंके स्पन्दन द्वारा उत्पन्न शब्दोंको भी संयम(धारणा, ध्यान, समाधि,) द्वारा सुनकर उन उन देवताओंके मन्त्र-रूपसे उन शब्दोंका विधान किया है।

प्रकृतिका जो पहला स्पदन व्यापक प्रकृतिमें जो एक महान् शब्द उत्पन्न करता है, उसीके परिणामरूपसे अनेक शब्द उत्पन्न होते है। इसलिये पृथक् महान् शब्द ओंकारसे ही अन्य समस्त मन्त्रोंकी उत्पत्ति हुई और संसारके जितने शब्द और वर्णमालाके वर्ण हैं, सभी ओंकाररूपी महान् शब्दके विकारसे उत्पन्न हुए हैं। ऐसा समझना शास्त्र-सम्मत होगा। केवल संस्कृत वर्णमालाके ककारादि शब्द प्रकृतिके साक्षात् स्पन्दनके साथ प्राकृतिक सम्बन्ध रखनेके कारण बीज-मन्त्रोंके निकट होनेके कारण सभी बीजरूप हैं और संस्कृत भाषा सभी भाषाओंकी मातृरूपा है। अन्यान्य भाषाओंके शब्दोंके साथ प्रकृतिके दूर परिणामका सम्बन्ध होनेसे साक्षात् सम्बन्धका अभाव होनेके कारण वे प्रकृतिका स्पन्दन न होकर विकृतिका स्पन्दन है, इसलिये वे बीजरूप नहीं हो सकते।

जिस तरह समष्टि-प्रकृतिका प्रथम स्पन्दन ओंकार समष्टि-प्रकृतिके गर्भसे उत्पन्न होता है, उसी तरह व्यष्टि शरीरमें भी प्रकृतिका स्थान मूलाधार चक्रस्थित कुलकुण्डलिनीमें होनेके कारण आदि नाद प्रणवकी उत्पत्ति कुलकुण्डलिनीसे होती है अन्यान्य समस्त नाद वहांसे निकलकर इड़ा, पिङ्गला, और सुषुम्नारूपी त्रिविध योगनाड़ीके द्वारा भिन्न भिन्न पथोंमें प्रवाहित होकर मन्त्र और वर्णरूपसे हृदय, तालु, कण्ठ, जिह्वा, ओष्ठ, दन्त, आदि स्थानोंद्वारा प्रकट होते हैं।

कुण्डलिनीमेंसे प्रकाशित परा नामक, अविनाशी वाक्से शब्दकी उत्पत्ति होती है, जो जीव-शरीरमें अनेक प्रकारसे घूमकर गद्य-पद्यादि भेदसे विविध भांतिसे प्रकाशित होता है।

परमात्माकी इच्छाशक्ति-रूपिणी मूलाधार-पद्म-स्थिता कुलकुण्डलिनीकी शक्तिसे मूलाधार पद्ममें प्रथमतः परा-नादकी उत्पत्ति होती है, इसके अनन्तर वह नाद स्वाधिष्ठान पद्ममें उठकर पश्यन्ती आख्याको प्राप्त होता है। उसके बाद धीरे धीरे और भी ऊपर आकर अनाहत-पद्ममें बुद्धि-तत्त्वके साथ मिलकर उस नादका नाम मध्यमा होता है। उसके ऊपर कण्ठस्थित विशुद्ध चक्रमें उस नादका नाम वैखरी होता है। यही शब्द-निष्पन्न वैखरी नाद कण्ठ, मस्तक, तालु, ओष्ठ, दन्त, जिह्वामूल, जिह्वाग्र, जिह्वापृष्ठ और नासाग्रद्वारा क्रमशः अग्रसर होता हुआ कण्ठ, तालु, ओष्ठ और कण्ठौष्ठद्वयद्वारा प्रकाशित होकर अकारसे क्षकार पर्यन्त वर्णमालाओं-का विकास करता है। जीव-शरीरमें कुलकुण्डलिनी प्राणशक्तिस्वरूपा है, उसके साथ इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्नाका सम्बन्ध है और इन तीनों नाड़ियोंके द्वारा ही प्राण, अपान, समान, उदान, आदि दशविध वायुका प्रवाह समस्त शरीरमें व्याप्त होता है।

प्राण-शक्तिके द्वारा प्राणादि वायु सञ्चालित होकर समस्त शब्दोंको प्रकाशित करता है। इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्नाके साथ समस्त वायुका सम्बन्ध होनेसे प्रकृति-स्पन्दजनित अकारसे लेकर क्षकार पर्यन्त समस्त वर्णमालाकी उत्पत्ति इन तीनों नाड़ियोंके द्वारा होती है। 'अ' से 'अः' पर्यन्त समस्त वर्णमाला इड़ा नाड़ीसे प्रवाहित होती है। 'क' से 'म' पर्यन्त समस्त वर्णमाला पिङ्गला नाड़ी प्रवाहित होती है और 'य' से 'क्ष' पर्यन्त समस्त वर्णमाला सुषुम्ना पथमें प्रवाहित होती है। इस तरह ॐसे लेकर समस्त मन्त्रोंकी उत्पत्ति समष्टि-प्रकृतिकी तरह व्यष्टि-प्रकृतिमें होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इतना ही नहीं, व्यष्टि-प्रकृति समष्टि-प्रकृतिकी ही प्रतिकृति या प्रतिबिम्ब होनेसे समष्टि-प्रकृतिके प्रत्येक स्पन्दका व्यष्टि-प्रकृतिमें और व्यष्टिके प्रत्येक स्तरका सम सम्बन्ध समष्टि-प्रकृतिके उसी अधिकारके स्तरके साथ रहता है, इसलिये इसके नादका प्रतिबिम्ब उसमें और उसके नादका प्रतिबिम्ब इसमें आ गिरता है। अतएव साधक अपनी व्यष्टि-प्रकृतिके जिस जिस स्तरमें संयम करता है उसीमें समष्टि-प्रकृतिके तत् तत् स्तरका नाद सुन सकता है। दृष्टान्तरूपमें समझ सकते हैं कि साम्यावस्था प्रकृतिका प्रथम नाद प्रणव होनेसे जिस समय साधक अपनी व्यष्टि-प्रकृतिको भी साम्यावस्थापर पहुंचावेंगे, उसी समय अपनी प्रकृतिमें ही समष्टि-प्रकृतिके प्रथम नाद ॐकारको सुन सकेंगे। वह नाद मूलाधार चक्रस्थ कुलकुण्डलिनीसे निकलकर सहस्रारमें जाकर लय हो जायगा।

इसी तरह अपनी व्यष्टि-प्रकृतिको पूर्ण साम्यावस्थाके अतिरिक्त जिस जिस स्तरमें संयम करेंगे, उस उस स्तरके साथ समष्टि-प्रकृतिके जिस जिस स्तरका सम्बन्ध है उस उस स्तरका नाद अपनी प्रकृतिमें अनुभव करेंगे। इसी तरह महर्षिगण अपनी प्रकृतिमें ही समष्टि नाद सुनते हैं और उन्हीं नादोंके अनुसार ही श्रीभगवान् तथा देवताओंके साधनार्थ मन्त्र-समूह और वर्णमालाओंका आविष्कार करते हैं।

इस प्रसंगमें यह सब वर्णन करनेका तात्पर्य यही है कि मन्त्रोंमें असाधारण शक्ति है, जिससे भगवान् प्रसन्न होते हैं, देवता वशीभूत होते हैं और अनेक प्रकारकी सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

मन्त्रयोगी मन्त्र-सिद्धिसे, हठयोगी तप-सिद्धिसे, और लययोगी संयम-सिद्धिसे विभूतियोंको लाभ किया करते हैं। मन्त्रके साथ जब दैवी शक्तिका साक्षात् सम्बन्ध है तो मन्त्रकी सहायतासे यथावत् शक्तिका प्रकाश होना स्वतःसिद्ध है। यही मन्त्रोंसे शक्तिके आविर्भाव होनेका विज्ञान है। जिन अक्षरोंके परस्पर समन्वयसे मन्त्र बनते हैं वे इस तरहसे मिलाये जाते हैं, जिस प्रकार धातु और रासायनिक पदार्थोंको विचारपूर्वक मिलानेसे उसमें बिजलीकी शक्ति प्रकट होती है। उसी प्रकार शक्तिमान् अक्षर-समूहके मिलानेसे अद्भुत दैवीशक्ति मन्त्रमें प्रकाशित होती है।

मन्त्रयोगमें जो नाम और रूपके द्वारा साधन-विधि बतायी गयी है, उसमेंसे दिव्य नाम अर्थात् मन्त्रके द्वारा ऊपर लिखित उपायसे इष्टदेवकी साधना हुआ करती है। इष्टदेवका लक्ष्य करके इष्टदेवका मन्त्र-जप और उसकी अर्थ-भावना करते करते जिस प्रकृतिके साथ इष्टदेव तथा मन्त्रका सम्बन्ध है, उसमें अपनी चित्त-वृत्तिको विलीन कर सकते हैं। जिस तरह रूपके अवलम्बनसे भावमें और भावद्वारा भावग्राही भगवान्में आत्मा विलीन होता है, उसी तरह मन्त्रके साधनसे मन्त्रमूलक प्रकृति और प्रकृतिके अधीश्वर इष्टदेवतामें आत्मा विलीन होता है। इस तरह व्यापक-प्रकृतिके साथ मन्त्रके द्वारा अपनी आत्माकी जितनी एकता होती है, उतनी ही व्यापक-प्रकृतिकी शक्तिको साधक प्राप्त कर सकता है और मन्त्र तथा देवताके भेदको भूलकर दैवी-प्रकृतिमें विराजमान इष्टदेवतामें साधकका आत्मा लवलीन होकर भाव-समाधिको प्राप्त हो जाता है।

जिस नाम तथा रूपके अवलम्बनसे जीव संसारमें बद्ध हो गया था, उसी नाम तथा रूपको दिव्य भावके साथ आश्रय करके इस प्रकार जीव नामरूपसे विनिर्मुक्त होकर ब्रह्म-पदको प्राप्त करता है। नामरूपमय मन्त्रयोगकी साधनाके द्वारा अन्तमें सविकल्प समाधिरूप महा भाव-समाधिको प्राप्त करके साधक चिन्मय निराकार तथा निर्गुण ब्रह्मकी राजयोगोक्त साधनाका अधिकार लाभ करता है। गुरुद्वारा मार्ग प्रदर्शित होकर मन्त्र-योगके सोलह अङ्गोंके साधनसे अन्तमें निर्विकल्प समाधि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को प्राप्त करके साधक मुक्त हो जाता है। यही सब साधनाका रहस्य है।

अब इस मन्त्रयोगकी षोड़शाङ्ग विभक्त साधन-प्रणाली संक्षेपतः दिखायी जाती है।

चन्द्रमाकी सोलह कलाकी तरह यह मन्त्रयोग भी सोलह अङ्गोंमें विभक्त है। जैसे--

१ भक्ति, २ शुद्धि, ३ आसन, ४ पञ्चाङ्गसेवन, ५ आचार, ६ धारणा, ७ दिव्य देशसेवन, ८ प्राण-क्रिया, ९ मुद्रा, १० तर्पण, ११ हवन, १२ बलि, १३ याग, १४ जप, १५ ध्यान और १६ समाधि।

(१) भक्ति--भक्तिके तीन भेद हैं-वैधी, रागात्मिका और परा। इनका विवरण पहले समझाया जा चुका है।

(२) शुद्धि--शरीर, मन, दिशा और स्थानभेदसे शुद्धि चार प्रकारकी हैं, उसमें शरीर-शुद्धिके लिये साधकको स्नान-कार्य सबसे पहिले करना चाहिये। शास्त्रमें सात प्रकारके स्नान बतलाये गये हैं।

मान्त्रं भौमं तथाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च।
वारुणं मानसञ्चैव सप्तस्नानं प्रकीर्तितम् ॥
आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रं भौमं देहप्रमार्जनम्।
आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥
यत्तदा तपवर्षेण स्नानं दिव्यमिहोच्यते।
वारुणं चावगाहः स्यान्मानसं विष्णुचिन्तनम् ॥

मान्त्र, भौम, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण, और मानस, यही स्नानके सात भेद हैं। आपोहिष्ठादि मन्त्र तथा जलसे जो स्नान किया जाता है वह मान्त्र-स्नान कहा जाता है। शरीरको वस्त्रसे भली प्रकार पोंछनेको भौम-स्नान कहते हैं। भस्म-धारणको आग्नेय स्नान कहते हैं। गोरजका शरीरपर लेपन अथवा उसका स्पर्श, इसको वायव्य स्नान कहते हैं। धूपमें बरसती हुई वर्षाके जलमें स्नान करनेको दिव्य स्नान कहते हैं। जलमें डूबकर स्नान करनेको वारुण स्नान कहा जाता है और कोटि सूर्य प्रकाश-सम्पन्न श्रीभगवान् विष्णुके ध्यानको मानस स्नान कहते हैं। इससे आत्म-प्रसाद और इष्टदेवकी कृपा प्राप्त होती है। यह शरीर-शुद्धि हुई।

पीपल, बरगद, आंवला, विल्व और अशोक इन पांच वृक्षोंसे युक्त पञ्चवटीके नीचेका स्थान बहुत ही सिद्धि देनेवाला है। गोशाला, गुरु-गृह, देव-मन्दिर, वनस्थान, तीर्थादि पुण्यक्षेत्र, नदीतट, ये स्थान सदा ही पवित्र समझे जाते हैं। ये स्थानकी शुद्धियां हैं।

पूर्व अथवा उत्तरमुख बैठकर जप-ध्यानादि क्रिया करना, रात्रिको सदा उत्तरमुख बैठना, यह दिक्-शुद्धि है।

श्रीगीताजीके सोलहवें अध्यायमें जो अभय, सत्त्व-संशुद्धि आदि २६ दैवी सम्पत्तियां कही गयी हैं, उनका धारण करना ही मानस-शुद्धि है, इस तरह ऊपर कही गयी चारों शुद्धियोंका संशोधनकर आसनकी कल्पना करनी चाहिये।

(३) आसन--मन्त्रयोगमें प्रधानतः हितप्रद दो आसन हैं। स्वस्तिकासन और पद्मासन।

आसन-भेद, आसन शुद्धि आसन-क्रिया इन तीनोंके द्वारा आसन-सिद्धि होती है। कम्बल, कुशासन, सिंह चर्म, मृगचर्म आदिके आसन अति शुद्ध कहे गये हैं। गीताके अनुसार--

चैलाजिनकुशोत्तरम्

-के क्रमसे आसन निर्माण करनेसे योगसाधनमें सिद्धि प्राप्त होती है।

खाली पृथ्वीपर बैठनेसे दुःखकी प्राप्ति, काष्ठासनसे दुर्भाग्य, बाँसके आसनसे दरिद्रता, पाषाणके आसनसे रोग, तृणके आसनसे यशकी हानि, पल्लवके आसनसे चित्त-विभ्रम और वस्त्र-निर्मित आसनसे जप ध्यान और तपकी हानि हुआ करती है। इसलिये यह सब आसन निषिद्ध माने गये हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(४) पञ्चाङ्ग सेवन—

गीता सहस्रनामानि स्तवः कवचमेव च।
हृदयं चेति पञ्चैते पञ्चाङ्गं प्रोच्यतेबुधैः॥

गीता, सहस्रनाम, स्तव, कवच और हृदय इनको विद्वानोंने पञ्चाङ्ग कहा है। अपने अपने सम्प्रदायके अनुसार गीता और अपनी अपनी पद्धतिके अनुसार सहस्रनाम, स्तव, कवच और हृदय-के प्रतिदिन पाठ करनेसे मन्त्रयोगी कल्मषरहित होता हुआ योगसिद्धिको प्राप्त करता है।

(५) आचार-तीन प्रकारके हैं—

दिव्य, दक्षिण और वाम-इनमें दक्षिण आचार निवृत्तिपरक है, वाम तामसी कामनावालोंके लिये है और दिव्याचार सर्वजीव-हितकर है और प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनोंसे अतीत है। इनके विशेष भेद गुरुमुखसे समझने पड़ेंगे।

(६) धारणा—बाह्य और अभ्यन्तर भेदसे दो प्रकारकी है। मन्त्रयोगमें धारणा परम सहायक है। बाहरके पदार्थोंमें मनके योगसे बहिर्धारणाका साधन और सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्जगत्के विषयोंमें मनके योगसे अन्तर्धारणाका साधन होता है। धारणाकी सिद्धि श्रद्धा और योगमूलक है

(७) दिव्य देशसेवन— जिस तरह गौके सब शरीरमें दुग्ध व्याप्त रहने पर भी वह स्तनद्वारा ही क्षरित होता है, उसी तरह परमात्माकी शक्ति सर्व-व्यापक होनेपर भी उसका विकास दिव्य देशोंके द्वारा होता है, यह दिव्यदेश सोलह हैं, जैसे—

अग्नि, जल, लिङ्ग, स्थण्डिल, कुड्य, पट, मण्डल, विशिख, नित्ययन्त्र, भावयन्त्र, पीठ, विग्रह, विभूति, नाभि, हृदय, और मूर्धा; यही १६ दिव्य देश हैं साधकके अधिकारानुसार इन दिव्य देशोंमें उपासना करनेका उपदेश सबको प्राप्त होता है।

(८) प्राण-क्रिया—मन, प्राण और वायु ये तीनों एक दूसरेसे सम्बन्धयुक्त हैं। इसलिये वायु और प्राण कार्य-कारणरूप हैं अतएव प्राणायाम-क्रियाके साथ न्यासका सम्बन्ध है। प्राणायामके भेद आगे वर्णन किये जा सकते हैं। न्यासके कई भेद हैं, उनमें सात प्रधान हैं जो यथाधिकार गुरुदेवसे सीखने योग्य है। साधारण उपासनामें करन्यास और अङ्गन्यास ही उपयोगी हैं।

(९) मुद्रा—मुद्राओं द्वारा देवताओंका आनन्द-वर्धन होता है और साधकोंके पापोंका भी नाश होता है। पूजन, जप, ध्यान, आवाहन आदि कार्योंमें उन कार्योंके लक्षणानुसार मुद्राओंका प्रदर्शन करना उचित है।

शंख, चक्र, गदा, पद्म, वेणु, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ज्ञान, गरुण, विल्व, वाराही, नारसिंही, हयग्रीवी, धनुष, वाण, परशु, जगन्मोहिका और कम्पनायिका, इन उन्नीस मुद्राओं द्वारा श्रीविष्णु भगवान्को आनन्द प्राप्त होता है।

(१०) तर्पण—देवतागण तर्पणसे बहुत ही शीघ्र तृप्त होते हैं। तर्पण सकाम और निष्काम भेदसे दो प्रकारके होते हैं। कामनानुसार तर्पण करनेके द्रव्य भी अलग अलग होते हैं। तर्पण मन्त्र-योगका एक प्रधान अङ्ग है। अपने इष्टदेवको शीघ्र प्रसन्न करनेकी कोई इच्छा रक्खे तो प्रति-दिन तर्पण किया करे।

(११) हवन—अर्घ्यादिसे भूमि शोधन करके तीन रेखा खींचे और विधिपूर्वक अग्नि लाकर 'क्रव्यादिभ्यो नमः' इस मन्त्रका तथा मूल मन्त्रका उच्चारण करके कुंडमें, स्थण्डिलमें अथवा भूमिमें व्याहृतित्रयसे अग्नि स्थापन करे। स्वाहान्त मन्त्रसे तीन बार हवन करके षडङ्ग हवन करे और अपने अपने सम्प्रदायानुसार इष्टदेवका आवाहन करके मूल मन्त्रसे षोडश आहुति देवे। नित्य होमद्वारा इष्टदेव प्रसन्न होते हैं। पहले इष्टदेवको आहुति देकर पीछे अन्य देव-देवियोंको उनके अङ्गभूत समझकर उनके सम्वर्धनार्थ भी आहुति प्रदान करना उचित है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(१२) बलि—बलिके साधानमें आत्मबलि सबसे श्रेष्ठ है। अपनेको ही इष्टदेवके समर्पित कर देना चाहिये। इससे अहंकारका नाश होता है। बलिके साधनमें काम क्रोध आदि रिपुओंकी बलि द्वितीय स्थानीय है। ये सब अन्तर्यागसे सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं। इष्टदेवके प्रसन्नार्थ उत्तम फूलोंकी बलि दी जाती है।

(१३) याग—अन्तर्याग और बहिर्याग भेदसे दो प्रकारका है। अन्तर्यागकी महिमा सर्वोपरि है। मानसयाग, मानसजप और मानसकर्मके लिये कालशुद्धि देशशुद्धि शरीरशुद्धि आदिकी कुछ भी अपेक्षा नहीं रहती। वह सब समयमें समानरूपसे हो सकते हैं।

बाह्यपूजामें प्रथम मूलमन्त्रका उच्चारण करके पुनः देय वस्तुका उच्चारण करे। इस प्रकार सब उपचार देवताको अर्पण करना चाहिये। पूजामें महर्षियोंने इक्कीस, सोलह, दस, और पांच प्रकार वर्णन किये हैं। आवाहन, स्वागत, आसन, स्थापन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, वस्त्र, उपवीत, भूषण, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, माल्य, आर्ति, नमस्कार, और विसर्जन यह एकविंशति उपचार हैं।

आवाहन, स्थापन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, वस्त्र, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, आर्ति, और प्रणाम ये षोड़सोपचार हैं।

पाद्य, अर्घ्य, स्नान, मधुपर्क, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, और नैवेद्य ये दस उपचार हैं।

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य ये पञ्च उपचार हैं।

(१४) जप—

मननात्त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्तितः।
जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्वरानने ॥

मनन करनेसे त्राण (रक्षा) करता है, इसलिये उसे मन्त्र कहते हैं। जप करते करते साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। सांसारिक विषयोंसे मनको हटाकर मन्त्रके अर्थका चिन्तन करता हुआ उच्चारणमें न बहुत शीघ्रता करे और न विलम्ब, किन्तु मध्यम वृत्तिसे जप करे। यह जप तीन प्रकारका होता है—मानस, उपांशु और वाचिक। जिस मन्त्रको जप करनेवाला भी न सुन सके, वह मानसिक जप कहा जाता है, उपांशु जप उसे कहते हैं जो केवल जप करनेवालेको सुनायी पड़े और जो मन्त्र वचनसे उच्चारण किया जाय और दूसरेको भी सुनायी पड़े वह वाचिक जप है। (वाचिक जपसे उपांशु और उपांशु जपसे मानस श्रेष्ठ है।)

अति धीरे जप करनेसे रोग होता है, और अति शीघ्रतासे जप करनेसे धनक्षय होता है, इसलिये परस्परमें मिला हुआ मौक्तिक हारकी नांई जप करें। जो साधक जप करते समय शिव, शक्ति और वायुका संयम न कर सके, वह चाहे कल्पपर्यन्त ही जप क्यों न करता रहे, उसे सिद्धि मिलना दुर्लभ ही है।

उपासकोंको उचित है कि देव-मन्दिर अथवा साधनोपयोगी पवित्र एकान्त स्थानमें बैठकर साधन करे। साधन-स्थान गोबर, गङ्गाजल आदिसे शुद्ध करना उचित है। उत्तम भावपूर्ण चित्रोंसे सुशोभित रखना उचित है, जिससे चित्तमें पवित्रता उत्पन्न हो। साधन-गृहमें राजसिक और तामसिक-कार्य कभी नहीं होने चाहिये। असत्-पुरुषोंका प्रवेश होना उचित नहीं है। मोक्षाभिलाषी पुरुष एकान्त गङ्गातट, पञ्चवटी, जङ्गल, तीर्थ आदि प्रदेशोंमें अपने अपने सम्प्रदायके अनुसार सेवनकर साधन करें। विशेष सिद्धि लाभ करनेकी इच्छा हो तो जमीनके अन्दर गुफा बनाकर उसमें साधन करें।

अपने स्थानकी, मन्त्रकी, पूजा-सामग्रीकी और देवताकी शुद्धि जबतक न कर ले, तबतक पूजा करना वृथा है। पञ्चशुद्धि-रहित पूजा अभिचार-मात्र है, स्नान, भूतशुद्धि, प्राणायाम और षडङ्गन्याससे आत्म-शुद्धि होती है। संमार्जन, लेपन, वितान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धूप, दीप, पुष्प, माला आदिसे शोभित और विविध वर्णोंसे भूषित करनेसे स्थानकी शुद्धि होती है। मन्त्रके अक्षरोंको मातृका वर्णसे संयुक्त करके दो बार क्रम और उत्क्रमसे पाठ करनेसे मन्त्र-शुद्धि हुआ करती है। मन्त्रोंका संस्कार भी अवश्य करना चाहिये। जनन, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गुप्ति इन दस प्रकारके संस्कारोंद्वारा मन्त्रकी शुद्धि होती है। पूजा-पदार्थोंको जलसे धोकर मूल-मन्त्रसे विधिपूर्वक अभिमन्त्रित करके धेनु-मुद्रा दिखलानेसे द्रव्य-शुद्धि होती है। मन्त्र जाननेवाला साधक मूल-मन्त्रसे पीठ-देवीका प्रतिष्ठापन करे, पुनः पुष्प माला धूप दीप आदि समर्पण करे। जलसे तीन वार प्रोक्षण करनेसे देव-शुद्धि होती है। इसतरह पञ्च-शुद्धि विधान करके पूजा करना उचित है।

उपासना-भेदसे बीज-मन्त्र भी अलग हैं। जैसे कृष्णबीज, रामबीज, गणपतिबीज और शिवबीज इत्यादि। बीजके साथ मूल बीज मिलाकर अथवा एक बीजके साथ अन्य बीज मिलानेसे मन्त्रमें विचित्र शक्ति पैदा होती है। मन्त्र शाखा-पल्लव-संयुक्त होनेसे विलक्षण भावको धारण करता है। किसी किसी मन्त्रविशेषमें बीज-शाखा-पल्लव तीनों होते हैं। शान्ति पुष्प है। इष्ट साक्षात्कार फल है। शाखा और पल्लव केवल भावमय हैं। शक्ति बीजमें निहित रहती है। दृष्टान्तरूपमें समझ सकते हैं, जैसे—

"ॐ क्लीं कृष्णाय नमः"

इस मन्त्रमें 'ओं' सेतु है, क्लीं बीज है, 'कृष्ण' शब्द शाखा है, 'नमः' पल्लव है, चित्त-वृत्तिकी शान्ति साधकके लिये पुष्परूप है, और श्रीकृष्णरूप इष्टदेवका साक्षात्कार फलस्वरूप है। यही मन्त्र-विज्ञानका गूढ़ रहस्य है। कोई कोई मन्त्र बीज-रहित शाखा-पल्लव-संयुक्त रहते हैं, वे भावप्रधान मन्त्र होते हैं।

(१५) ध्यान—अध्यात्म-भावसे ही मन्त्र-योगके ध्यानोंका आविर्भाव हुआ है। मन्त्र-शास्त्रके तत्त्वज्ञ योगियोंने विष्णुकी पूजाके विषयमें प्रधानतः सात प्रकारके ध्यान कहे हैं। अपने इष्ट-देवको मनसे जाननेको ध्यान कहते हैं। ध्यान ही मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण है। मनुष्य जिस तरहका ध्यान करता है, उसी तरहकी उसको समाधि-प्राप्ति होती है। नदीका जल जिस तरह समुद्रमें जानेपर समुद्रके जलसे अभिन्न होजाता है। उसी तरह मनुष्यकी आत्मा ध्यानके परिणाममें तद्भावको प्राप्त कर परमात्मासे अभिन्न हो जाती है।

(१६) जिस तरह लय-योगकी समाधिको महालय कहते हैं, हठ-योगकी समाधिको महाबोध कहते हैं, उसी तरह मन्त्रयोगकी समाधिको महा-भाव-समाधि कहते हैं। जबतक त्रिपुटी रहती है, तबतक ध्यानाधिकार रहता है। त्रिपुटीके लय होजानेसे महाभावका उदय होता है। मन्त्र-सिद्धि-के साथ ही साथ देवतामें मनका लय होकर त्रिपुटीका नाश होनेपर योगीको समाधिकी प्राप्ति होती है। महाभावकी प्राप्ति ही मन्त्रयोगका चरम लक्ष्य है।

उपर्युक्त विषयोंको किसी पूर्ण विद्वान, नैष्ठिक, साधन-सम्पन्न महापुरुषकी सेवासे जानना चाहिये। हमने केवल स्मरणार्थ यहां सूची देकर दिग्दर्शनमात्र करा दिया है। विषय बहुत ही गम्भीर और गोप्य तथा केवल गुरु-कृपा-गम्य है।*

---

* लेखमें इन सब विषयोंपर इतना लिखनेमें हमारा तात्पर्य यही है कि एक तो प्रसङ्गसे विषय ही यह आगया। दूसरे, पाठकोंमें जो समुदाय इन बातोंसे अनभिज्ञ होगा और जिसे श्रद्धा होगी, वह योग्यपुरुषोंसे इन विषयोंको जानकर उपासनामें प्रवृत्त होगा।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म्म कर्तुमिहार्हसि॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुख कहां है ?

(लेखिका—बहिन जयदेवीजी)

कुछ दिनों पूर्व बीकानेर नगरमें दो सास-बहू रहती थीं, सासका नाम विद्यावती और बहूका नाम रमाबाई था। दोनों पढ़ी लिखी थीं। सास सरल स्वभावकी और बहू कुछ चिड़चिड़े स्वभावकी थी। बुद्धि दोनोंकी शुद्ध और तीव्र थी। सास तत्त्वज्ञ थी और बहूके मनमें अभी संशय-विपर्य्यय शेष थे, फिर भी उसके मनमें शास्त्रपर श्रद्धा थी। पूर्वमें तो इनका घर धन और जन दोनोंसे परिपूर्ण था, कोठियां चलती थीं, घरमें हर समय बड़े-बूढ़ोंकी, बाल-बच्चोंकी और दास-दासियोंकी चहल-पहल बनी रहती थी। परन्तु कालचक्र बलवान् है, फिरती-घिरती छाया है, कभी किसीका समय एक-सा नहीं रहता! लक्ष्मी चपला है, कभी एक स्थान-पर स्थिर नहीं रहती! जिस समयका यह वर्णन है, उस समय तो घरभरमें ये केवल ये दो ही प्राणी बच रहे थे। एक छोटासा घरका मकान और चौक बाजारमें एक दूकान थी। दूकानका किराया दस रुपये मासिक आता था! यद्यपि पृथ्वीके सब देशों-के साथ भारतका सम्बन्ध होनेसे यहांके खाद्य और आच्छाद्य पदार्थ बाहर चले जानेके कारण भारतमें उपयोगी पदार्थोंकी कमी और देखनेमात्रको धनकी वृद्धि हो गयी है। यद्यपि घुनी हुई लकड़ीके समान भारत ऊपरसे ठोस दीखता है, परन्तु भीतरसे पोला है। फिर भी बड़े-बूढ़े ऋषिमुनियोंके पुण्यप्रतापसे अब भी, जहां अन्य देशोंमें दस रुपयेमें जो काम होता है, वहां भारतमें एक रुपयेमें ही वह काम हो जाता है। दोनों सास-बहूकी दस रुपये महीनेमें गुजर हो जाती थी। 'सन्तोषी सदा सुखी' सन्तोषी भोजन-वस्त्र पानेसे ही प्रसन्न रहता है। तृष्णाका पेट तो बहुत बड़ा है, तीनों लोकोंका राज्य पानेपर भी वह नहीं अघाती! सास-बहू रूखा-सूखा खाकर ठण्डा जल पीकर और मोटे सोटे कपड़ोंसे तन ढक-कर प्रसन्न रहती थीं। रमाबाईको कभी कभी पूर्वके ऐश्वर्यकी सुधि आ जाया करती थी और वह साससे ऊटपटांग प्रश्न कर बैठा करती थी। विद्यावतीको जाग्रत्में तो क्या, स्वप्नमें भी कभी पूर्वकी याद नहीं आती थी, उसको अपनी देहकी ही सुध-बुध नहीं रहती थी, फिर ऐश्वर्य-धनकी सुध तो होती ही कहांसे? बहूके ऊल-जलूल प्रश्नोंका समाधान वह भलीप्रकार समझा बूझाकर कर दिया करती थी! इस समय विद्यावतीकी उमर लगभग पचास और रमाबाईकी तीस वर्षकी थी। विद्यावती रमाबाईको बेटी कहकर पुकारा करती और रमाबाई सासको माताजी कहती थी। एक दिन दोनोंका यह संवाद हुआ।

रमाः—माताजी! सुख कहां है?

विद्याः—(हँसतीसी) बेटी! तेरा यह प्रश्न तो ऐसा है कि जैसे मछलियां पूछें कि जल कहां है! पक्षी पूछें कि वायु कहां है? मनुष्य पूछें कि पृथ्वी कहां है? दूध पीता हुआ बालक पूछे कि दूध कहां है? कोई पूछे कि भोजन करनेसे तृप्ति होती है या नहीं? या तू पूछे कि जिस घरमें मैं रहती हूं, वह घर कहां है? अथवा सामने घट रक्खा हो और कोई पूछे कि घट कहां है? जिस प्रकार ये सब प्रश्न निरर्थक हैं, उसीप्रकार तेरा यह प्रश्न भी है। मछलियां जलमें रहती हैं, पक्षी वायुमें उड़ते हैं, मनुष्य पृथ्वीपर बसते हैं, बालक दूध पी रहा है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोजनसे प्रतिदिन सबकी तृप्ति देखते हैं, घरमें रहना होता है और घट सामने रक्खा है, इन सबका प्रत्यक्ष होते रहनेपर जैसे पूछना वृथा है, ठीक वैसे ही तेरा पूछना भी व्यर्थ है! कहा भी है कि 'हाथ कंगनको आरसी क्या' प्रत्यक्षको प्रमाणकी क्या जरूरत है? जब आकाशके समान सुख सर्वत्र भरपूर है, तब 'सुख कहां है,' यह प्रश्न ही नहीं बनता! आकाशसे भी सुखमें एक विशेषता है, आकाश पोला है और सुख ठोस है। आकाशमें आकाशके कार्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और समस्त ब्रह्माण्ड भरा है, फिर भी आकाश पोला दीखता है, परन्तु सुख तो इतना ठोस है कि उसमें कोई वस्त प्रवेश ही नहीं कर सकती! पोला आकाश तो दीखता है, पर ठोस सुख दीखता नहीं! आश्चर्य है या नहीं?

रमाबाई:—(तमककर) माताजी! आपने तो मुझे मूढ़ ही बना दिया! आखिर मैं भी तो पढ़ी-लिखी हूं ही, कोई गाँवकी गँवारी निरक्षर तो हूँ नहीं, मुझे तो सुख कहीं भी नहीं दिखायी देता! आप कहती हैं कि सुख सब जगह ठसाठस भरा है! क्या आप कहीं सुखको सिद्ध कर सकती हैं? क्या आप सुखको घटके समान मुझे प्रत्यक्ष दिखा सकती हैं? बताइये कि सुख कहां है और है तो वह सबको क्यों नहीं दिखायी देता?

विद्यावती:—(रूखेसे मुखसे) बेटी! पढ़ी अवश्य है, पर अभी गुणी नहीं है! विचार तो कर, सुख कहां नहीं है? सर्वत्र सुख ही सुख तो है। अपनेमें, पतिमें, पुत्रमें, कुटुम्बमें, धनमें, धाममें, शहरमें, ग्राममें, बस्तीमें, उजाड़में सर्वत्र ही सुख है! खाने-पीनेमें, पहनने-ओढ़नेमें, नहाने-धोनेमें, गाने-रोनेमें, जन्मने-मरनेमें, आधि-व्याधिमें, भूख-प्यासमें सर्वत्र सुख ही है! बाल्य-युवा-जरामें, भूत-भविष्यत्-वर्तमानमें, सरदी-गर्मी-बरसातमें, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिमें, सत-रज-तममें, वात-पित्त-कफमें, और ध्यान-ध्याता-ध्येयमें सर्वत्र सुख ही है! परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीमें, ऋक्-यजुष्-साम-अथर्वणमें, जरायुज-स्वेदज-अण्डज-उद्भिजमें, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रमें और संन्यासी-वानप्रस्थ-गृहस्थ-ब्रह्मचारीमें सर्वत्र सुख ही है! आकाश-वायु-तेज-जल-पृथ्वीमें, श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसना-घ्राणमें, वाक्-पाणि-पाद-उपस्थ-पायुमें, प्राण-अपान-व्यान-उदान-समानमें, मन-चित्त-बुद्धि-अहंकार-मौनमें, सर्वत्र सुख ही है! कटु-अम्ल-लवण-तीक्ष्ण-कषाय-मधुरमें, खर-ऋषभ-गन्धर्व-मध्यम-पञ्चम-निषादमें सर्वत्र सुख ही है! मह-जन-तप सत्य-स्वर्ग-अन्तरिक्ष-मृत्युलोकमें, अतल-वितल-सुतल-महीतल-रसातल-तलातल-पातालमें, अस्थि-मज्जा-मेद-वीर्य-मांस-रुधिर-चमड़ेमें सर्वत्र सुख ही है! आठ वसु, नव ग्रह, दस अवतार, ग्यारह रुद्र और बारह आदित्यमें सर्वत्र सुख ही तो है, सारांश यह कि सुख सर्वत्र परिपूर्ण है, कोई भी देश-काल या वस्तु सुखसे रहित नहीं है।

रमाबाई:—(और भी अधिक ठनककर) माताजी! आप तो आज देहली-कलकत्ता मेलपर सवार हैं। हवाई घोड़ेपर चढ़ी हुई हैं, अथवा हवाई जहाजमें बैठी हुई आसमानकी सैर कर रही हैं, ऐसा मालूम होता है! आप आज शास्त्र, युक्ति और अनुभव तीनोंसे विरुद्ध उल्टी गंगा बहा रही हैं। ब्रह्मलोकका भी उल्लंघन कर ब्रह्ममय हो गयी हैं, ऐसा जँचता है! कहीं आपने आज भाँग तो नहीं पी ली है? भाँग तो आप कभी पीती नहीं हैं! नशा करनेकी तो आप सदैव निन्दा किया करती हैं! अथवा क्या आज बिना पिये ही आपको भंग चढ़ गयी है? कहीं आप सरीखे ऋषियोंने ही तो भंगकी तरंगमें पुराण नहीं लिख डाले थे? आपने तो आज वेद, पुराण, सन्त, महात्मा सभीके कहे हुए पर पानी फेर दिया! भला, आपकी ऐसी गप्पको कौन मानेगा?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किसीने सच कहा है कि 'साठी बुधि नाठी'! परन्तु आप तो पचास वर्षमें ही सठिया गयीं! बुढ़ापेमें सब इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं, इससे सारी इन्द्रियोंका बल ज़बानमें ही आ जाता है! इसीसे बच्चोंकी सी बातें कह रही हैं! क्या आपने धूपमें ही बाल सफेद कर लिये हैं? किसी युवा बहिन-भाईने आपकी बात सुन ली तो वैराग्यसे हाथ धोकर, भक्ति, ज्ञान, योगके मार्गसे हटकर संसारसे मुक्त होनेकी इच्छावाला भी संसारकी दलदलमें फँस जायगा। शास्त्र, सन्त, महात्मा तो पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि संसारमें सुख कहीं नहीं हैं। जन्ममें दुःख, मरणमें दुःख, बाल्य, युवा और वृद्धावस्थामें दुःख, आधि-व्याधि और भूख-प्यासमें दुःख, एवं स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरमें दुःख है! तथा सबको अनुभव भी ऐसा ही हो रहा है। इसके सिवा युक्तिसे भी किसी वस्तुमें सुख सिद्ध नहीं होता! इसीलिये शास्त्रकार संसारसे मुख मोड़कर परमेश्वरमें मन लगानेको कह रहे हैं। परन्तु आपने तो सबमें ही सुख गा डाला! भला, आपकी इस बातको कौन मानेगा? कोई शास्त्र-संस्कारहीन मूढ़ पुरुष भले ही मान ले! हाँ, आपकी बात सुनकर विषयी स्त्री-पुरुषोंकी अवश्य बन आवेगी! साधु महात्माओंके वचनोंको कौन मानेगा? मेरी समझसे आपका कथन सर्वथा विरुद्ध है! (कुछ सोचकर) नहीं! नहीं! पुराने चावल फार होते हैं! शायद मेरी ही भूल हो, कृपया मेरा समाधान कर दीजिये। सभी वस्तुओंमें सुख है तो क्या सबके अभावमें सुख नहीं है? सबके अभावमें भी तो सुख ही है!

विद्यावती:-(सरल स्वभावसे प्रसन्न होकर) 'बेटी! सबके अभावमें भी सुख ही है' ऐसा तू कहती है तब तो, मैं हारी और तू जीती! तेरे मुखमें घी-शक्कर! तब तो मैं सचमुच सठिया ही गयी हूं और मैंने धूपमें ही बाल सफेद किये हैं! सब वस्तुओंमें सुख ही सुख गा गयी परन्तु मर्मकी बात कहना भूल ही गयी! भगवान् बड़े दयालु हैं, सबके हृदयमें विराजमान हैं, अपने भक्तोंकी सर्वदा रक्षा करते हैं! उन्हीं कृपालु अन्तर्यामी भगवान्ने प्रेरणा करके तेरे मुखसे ही मेरी बात बड़ी करा दी और मुझ हारी हुईको भी जिता दिया, इसलिये फिर कहती हूं कि तेरे मुखमें घी शक्कर! बेटी! मैं तो घरमें ही बैठी हूं, मैंने बाहर कहीं पैर भी नहीं रक्खा है! न मैंने भाँग पी है, पुराणोंको पढ़नेसे मेरा नशा तो उतर गया है, भंग पीकर ऋषियोंने पुराण नहीं बनाये हैं, आजकलकी ऋषि-सन्तानको ही भंग चढ़ी हुई है, जो ऐसा कहते हैं। पुराण तो वेदकी कुञ्जी हैं, जैसे व्याकरण बिना संस्कृत-देववाणी नहीं आ सकती, इसी प्रकार अपौरुषेय वेदका अर्थ पुराणों बिना जाननेमें नहीं आ सकता, मेरी आंखें तो पुराणोंने ही खोल दी हैं, इसीलिये मुझे भाव तथा अभाव सभीमें केवल सुख ही दिखायी देता है। भगवान् करें कि इस भाव अभावके सुखको सभी बहिन-भाई, छोटे-बड़े जान जायँ, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है! बेटी! सब वस्तुओंमें सुख है और सबके अभावमें भी सुख है इसीसे सुखकी नित्यता सिद्ध होती है। जो नित्य सुख है, वही सुख है। जो परिच्छिन्न है, वह सुख नहीं है। श्रुति भगवती कहती है कि 'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति'॥ अर्थात् जो भूमा—परिपूर्ण है, वही निश्चय सुखरूप है, अल्पमें—परिच्छिन्नमें सुख नहीं है। इस श्रुति भगवतीके हितकारी वचनका अनादर करके जो मूढ़ परिच्छिन्न वस्तुमें सुख मानते हैं, वे मूढ़ अपनी हितैषिणी माताकी अवज्ञा करनेसे अवश्य ही जन्म-जन्मान्तरमें अनेक ऊँच-नीच योनियोंको प्राप्त होते हुए सर्वदा भटकते और कष्ट पाते रहेंगे! जो मूढ़ इस नित्य सुखको नहीं जानते, वही परिच्छिन्न पदार्थोंमें सुख मानकर दुःखका अनुभव करते हैं। क्योंकि परिच्छिन्न पदार्थ अनन्त हैं। सब पदार्थ किसीको प्राप्त हो नहीं सकते और मान लिया जाय कि प्राप्त भी हो जायँ तो परिच्छिन्न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पदार्थ स्थायी नहीं हैं, सभी नाशवान् हैं। इसलिये उनकी प्राप्तिसे किसीको करोड़ जन्मोंतक भी अखण्ड सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि कोई कहे कि थोड़ी देरको तो सुख मिल ही जाता है, तो थोड़ी देरके सुखसे क्या हुआ? थोड़ी देरके सुखसे तो पीछे इस सुखकी इच्छा और भी अधिक दुःख देती है। जैसे थोड़ी देरके लिये धन मिल गया और फिर तुरन्त चला गया तो जितना सुख मिला था, उससे दूना चौगुना दुःख हो जाता है। पतिका सुख किसी स्त्रीने थोड़े दिन भोगा और दैवयोगसे पतिका वियोग हो गया, तो उम्र भरका दुःख हो जाता है। विचारकर देखा जाय तो धनमें, पतिमें, पुत्रमें सुख है भी नहीं, सुखाभास है। धनवाली, पतिवाली और पुत्रवाली बहिनें दुखी ही देखनेमें आती हैं। धनसे अभिमान बढ़ जाता है, निर्धन बहिनें उनकी दृष्टिमें तुच्छ दिखायी देती हैं, वे सबको छोटी और अपनेको बड़ी समझती हैं, चाहे जिसे बुरी-भली जबान कह बैठती हैं, जरा-सी बातपर बिगड़ उठती हैं, कोई-न-कोई उनसे भी अधिक धनवाली होती हैं, तो उनसे ईर्ष्या करती हैं, दूसरी धनी बहिनकी कीर्ति सुनती हैं तो कुढ़ जाती हैं, ज्यों ज्यों धन बढ़ता है त्यों-ही-त्यों लोभ भी बढ़ता है, धनी बहिनें धनके मदमें बड़ी-बूढ़ियोंका भी निरादर करती हैं, इसलिये धनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये अनेक प्रकारके दोष हैं और ये दोष सब अनर्थके कारण हैं। इसलिये धनमें सुख नहीं है। इसीप्रकार पतिमें भी सुख नहीं है, उल्टा दुःख ही है, क्योंकि जैसे पुरुषके लिये स्त्रीकी इच्छा संसारका कारण है, वैसे ही स्त्रीके लिये पतिकी इच्छा भी संसारका कारण है। 'संसरने' का नाम संसार है अथवा जन्म-मरणका नाम संसार है। पतिके अनुग्रहसे ही गर्भ-धारणादि अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। अवश्य ही लौकिक सुख पतिसे प्राप्त होते हैं। परन्तु लौकिक सुख बूरके लड्डू हैं, खाये सो पछताये, न खाये सो पछताये। सच पूछिये तो यह विष-मिश्रित मिठाई है, खानेमें तो स्वाद आता है, परन्तु पीछे मरणकी प्राप्ति होती है। विचारसे देखा जाय तो पतिके शरीरमें सुख है भी नहीं, सुख हो तो सर्वदा ही प्रतीत होना चाहिये। पर सर्वदा तो वह सुख प्रतीत नहीं होता। काम-पीड़िता स्त्रीको पतिके शरीरमें और पतिको स्त्रीके शरीरमें सुखकी मोहवश भ्रान्ति होती है। यदि पतिके शरीरमें ही सुख हो, तो विधवा स्त्री जियें ही नहीं, और जियें भी तो सर्वदा दुखी ही रहें। परन्तु ऐसा नहीं होता! बहुतसी विधवा बहिनें पतिकी मृत्युके बाद प्रसन्न और हृष्ट-पुष्ट देखनेमें आती हैं। इससे सिद्ध होता है कि पतिमें सुख नहीं है। जब पतिमें ही सुख नहीं है तो पुत्रमें तो सुख होता ही कहांसे? पुत्रके होनेमें महान् कष्ट होता है, पालने-पोसनेमें महान् दुःख होता है, पढ़ाने-लिखानेमें परिश्रम और खर्च होता है, पढ़ जाय तब तो अच्छा, अगर अपढ़ रह गया तो नित्य ही छाती जला करती है। कमाऊ हुआ तो भली-भला, नहीं तो विवाहकी चिन्ता पड़ती है, बिना कमाईवालेको कौन अपनी लड़की दे? किसी अन्धे-धुन्धेने दे भी दी तो बेचारी आकर दुःख ही पाती है। आप रोती है और घरवालोंको रुलाती है। बहू-बेटे अलग हो गये तो लोकमें हँसी होती है। आजकल तो प्रायः अलग ही होते देखनेमें आते हैं। हाँ, कोई सौमें पांच भलेमानस शिष्टाचारी हुए तो क्या हुआ। इससे सिद्ध होता है कि धन, पति या पुत्रमें सुख नहीं है। इसी प्रकार धन, पति और पुत्रके अभावमें दुःख भी नहीं है। अविचारसे धन-पति-पुत्रादिके होनेमें सुखकी भ्रान्ति और उनके अभावमें दुःखकी भ्रान्ति होती है। बहुत सी धन-पति-पुत्रादिवाली स्त्रियां सुखी दीखती हैं और बहुत सी उनके होनेपर भी दुखी रहती हैं। बहुत सी धनादिके न होनेमें भी सुखी हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि सुख-दुःख पदार्थोंमें नहीं हैं, सुख-दुःख तो विचार अविचारमें है। विचारवान्को धनादिके होने, न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होने दोनोंमें ही सुख है और अविचारीको धनादिके होने, न होनेमें दुःख ही है। विचारवान् बहिनें नित्य-सुखको जानती हैं, इसलिये वे धनादिके होने और न होनेमें सुखी रहती हैं। अविचारवान् बहिनें नित्य सुखको नहीं जानतीं, इसलिये धनादिके होने और न होने दोनोंमें दुखी होती हैं। दुःखका कारण अविचार ही है, पदार्थका होना न होना कभी दुःखका कारण नहीं है। एक विधवा बहिन एक दिन इस प्रकार विचारने लगी:—

विधवा बहिनके विचार

मैं देखती हूं कि संसारमें न तो सब सुखी हैं और न जगत्में सब दुखी ही हैं! हाँ, ऊपरसे तो सब सुखी ही दीखते हैं, परन्तु कभी कभी दुखी होते हुए भी देखनेमें आते हैं। इससे सिद्ध होता है कि दुःखसे सुख विशेष व्यापक है। चाहे कोई भीतरसे सुखी न हो परन्तु ऊपरसे ऐसा ही अनुभव होता है। जब किसी बहिनका धन चला जाता है, तो रोती है, चिल्लाती है, 'मर गयी' 'मर गयी' पुकारती है, अब कैसे जिऊंगी, उमरभर जोड़ जोड़कर धन रक्खा था, कौड़ी कौड़ी जोड़के इकट्ठा किया था, सबका सब चला गया! दो एक दिन तो ऐसा करती है, फिर धीरे धीरे शोक घटता चला जाता है। जब याद आ जाती है, घड़ी-दो-घड़ी रो लेती है। फिर मनको समझा बुझाकर चुप हो जाती है। दो चार छः महीनेमें सब भूल जाती है। कभी किसीको विचार आ जाता है, तो धनकी इच्छा छोड़कर ईश्वरमें लग जाती हैं, नहीं तो फिर धन इकट्ठा करनेमें लग जाती हैं। इससे सिद्ध होता है कि धनके होने न होनेमें सुख-दुःख नहीं है, यदि धनमें सुख हो तो धन चले जानेपर हमेशा दुःख ही बना रहना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता, थोड़े दिनमें ही दुःख चला जाता है। इसलिये धनमें सुख नहीं है और धनके न होनेमें दुःख भी नहीं है। बिना धनवाली भी बहुतसी सुखी देखी जाती हैं।

जब किसी बहिनका पति या पुत्र मर जाता है, तो उसको उस समय जैसा दुःख होता है, वैसा दुःख पीछे नहीं रहता। दिन प्रतिदिन कम होता चला जाता है! जब कभी मूढ़ बहिनें उसे जाकर याद दिलाती हैं तब वह रोने लगती है और जब कोई चतुर बहिन यों समझाती है कि "बहिन! दुःख मानने और चिन्ता करनेसे कुछ भी लाभ नहीं है, संसारका सुख आगमापायी है, कर्माधीन है! पूर्व-पुण्यसे लोकका सुख मिलता है, पूर्व-पापसे लोकमें दुःखकी प्राप्ति होती है। संसारका सुख वास्तविक सुख नहीं है और संसारका दुःख भी मिथ्या है। यदि सुख-दुःख सच्चे हों तो सर्वदा बने रहने चाहिये, ये सर्वदा बने नहीं रहते, इसलिये मायिक और तुच्छ हैं। सुख-दुःख वस्तुतः पदार्थोंमें हैं भी नहीं, मनमें सुख-दुःख हैं। विषय-कामनावालीको ही पति न होनेसे दुःख होता है। जिनको विषय भोगकी लालसा नहीं है उनको पतिहीन होनेमें भी दुःख नहीं होता। बहुतसी गार्गि सुलभा जैसी हो गयी हैं, जिन्होंने विवाह ही नहीं किया और आजकल भी पतिहीन होनेपर जिनपर भगवतीकी कृपा होती है, वे ईश्वरके भजन-स्मरणमें लग जाती हैं और सब झंझटोंसे छूटकर भगवत्के ध्यानमें मग्न-प्रसन्न रहती हैं। एक भगवत् ही नित्य सुखरूप हैं, उन्हींके सुखसे सब सुखी दिखायी देते हैं। सुखरूप भगवत् कहीं दूर नहीं हैं, वह तेरे हृदयमें ही हैं, पाससे भी पास हैं। विषय-भोगकी इच्छाओंने सुखरूप भगवान्‌को ढाँक दिया है, इसलिये तू पतिके वियोगका सोच मत कर, विषय-भोगकी इच्छाओंको छोड़कर भगवत्के ध्यानमें लग जा, ध्यान करना न आता हो तो भगवत्का नाम ही सोते जागते आठों पहर जपा कर, ऐसा करनेसे तुझे विषय-भोगका स्वप्नमें भी ध्यान न आवेगा और सुखस्वरूप भगवान् तेरे हृदयमें ही प्रकट हो जायंगे!" चतुर बहिनका ऐसा उपदेश सुनकर बहुतसी बहिनें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवत्-भजनमें लग जाती हैं और उनको हर्ष-शोक कभी नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि सांसारिक सुख-दुःख वास्तविक नहीं हैं, ये सब मनके भ्रमसे सिद्ध हैं।

हे बेटी! उपर्युक्त विचार करके विधवा बहिन सुखरूप भगवत्के भजनमें लग गयी और सदाके लिये सुखी हो गयी। हे बेटी! इस सबका सारांश यह है कि भगवत् सुखरूप हैं, चराचर जगत्में वे ही व्यापक हो रहे हैं, जो उनको जानता है, उसे चराचर विश्वमें केवल सुख ही दिखायी देता है और जैसा तूने कहा, सर्वके अभावमें भी उसको सुख ही दिखायी देता है। मरना-जीना, आधि-व्याधि, सुख-दुःख आदि सब उसे समान ही दीखते हैं। न तो धनादि पदार्थोंमें सुख-दुःख हैं, और न धनादिके अभावमें ही सुख-दुःख हैं। सांसारिक सुख-दुःख दोनों ही मिथ्या और मनसे कल्पित किये हुए हैं, नित्य सुखस्वरूप तो एक भगवत् ही सत्य हैं। जो उनको जान लेता है, उसे संसारके सुख-दुःख दोनों ही शश-शृंगके समान भासते हैं। वह न कभी किसी वस्तुको पाकर हर्ष करता है, और न किसीके चले जानेसे शोक करता है। वह हर्ष शोक दोनोंमें समान रहता है। संसारके पदार्थोंकी इच्छा ही नित्य-सुखमें बाधारूप है। जिसको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं, उसको तो सर्वत्र सुख ही सुख भासता है। एक विद्वान् बहिन् अपने मनसे कहती है कि 'हे मनपक्षी! क्यों रोता है? यहां रोनेकी मनाई है, जान जाय तो भले जाय पर यहां पंख तड़फड़ानेमें भलाई नहीं है!' ऐसी बहिनें ही सुखरूप परमात्माको पाकर सर्वदा सुखी होती हैं, इसलिये हे बेटी! किसी वस्तुकी भी इच्छा मत कर और नित्य सुखरूप भगवत्को सर्वत्र देखती हुई सुखी हो जा! भगवत्को श्रुतिमें सत्य, ज्ञान, आनन्द, ब्रह्म, अनन्त इत्यादि अनेक नामोंसे कहा है, वे ही सत्य सुख-स्वरूप हैं और सबके आत्मा हैं, उनके सिवा यह सारा जगत् बन्ध्यापुत्रके समान मिथ्या-कल्पित है। संक्षेपसे तेरे प्रश्नका यह उत्तर है।

कुं०:-सच्चा सुख है ब्रह्म ही, मिथ्या है सब अन्य।
सच्चा सुख जो जानते, रहते सदा प्रसन्न॥
रहते सदा प्रसन्न, खिन्न कबहूँ नहिं होते।
देखें व्यापक ब्रह्म, स्वप्नमें जगते सोते॥
'जयदेवी' भज ब्रह्म, त्याग दे सबकी इच्छा।
मिथ्या है सब अन्य, ब्रह्म ही है सुख सच्चा॥

दो०:-विधवा बहनन हेतु यह, गाथा लिखी बनाय।
पढ़ें सुनें भगवत्-कृपा, शोक मोह भय जाय॥

आशा

रे मन दीन निरास न हो हरि दीनके बन्धु हैं साँचे सुभायन,
ह्वैहै जुपै सरनागत तौ अपनैहैं वे तोकहँ चौगुने चायन;
है रसना जेहि नामहिमें रसना करिहै किमि ताकर गायन,
जा अनुराग सों धोये रमापति दीन सुदामाके कर्कश पाँयन।

बल्देवप्रसाद मिश्र एम०ए०, एल-एल० बी०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम-विह्वल पण्डित*

गले दिन निमाई पण्डित सवेरे गङ्गास्नान करके पाठशालामें पढ़ाने गये। निमाई आ गये, इससे सैकड़ों विद्यार्थी वहां उपस्थित हो गये। जिनकी अवस्था कुछ अधिक थी और जो पढ़े-लिखे भी अधिक थे वे पण्डित महोदयके समीप बैठ गये। पोथियाँ बस्तोंमें बँधी रक्खी हैं। श्रीहरिके नामका स्मरण करके विद्यार्थियोंने बस्ते खोले। श्रीहरि-नामकी ध्वनि सुनते ही निमाईका शरीर आनन्दसे पुलकित हो गया। वे कहने लगे–'कैसा मधुर नाम है! श्रीकृष्ण तुम लोगोंका भला करें। अनर्थक विद्या पढ़नेके लिये तुम लोग इतनी चेष्टा क्यों कर रहे हो? श्रीभगवान्‌के चरणोंकी प्राप्ति ही जीवनका परम पुरुषार्थ है।' यह सुनकर विद्यार्थी लोग अध्यापकका मुँह देखने लगे। आवेशमें आकर निमाई पण्डित परमार्थकी बातें करने लगे।

निमाई पण्डित भलीभाँति समझाने लगे कि श्रीकृष्णका भजन करना ही जीवनका प्रधान उद्देश्य है। सभी विद्यार्थी मुग्ध होकर, बड़े ध्यानसे इसे सुनने लगे। कहते कहते निमाई पण्डित ए दम चुप हो गये। इसका कारण सुनिये विद्यार्थियोंको पढ़ानेके लिये वह पाठशालामें आ थे। विद्यार्थियोंको पाठ पढ़ानेहीको थे श्रीहरिका नाम सुनकर वे सारी बातें भूल गये कहांपर क्या करने आये हैं। आवेशमें आकर व भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करने लगे। यकायक उ बाहरी संसारका ज्ञान हो गया, तब उन्हें स्मर हुआ कि हम क्या करने आये थे और क्या कर लग गये। अपने कर्तव्यका ज्ञान होनेसे वे लज्जि हुए। लज्जित होनेसे चुप हो गये। फिर अपराधीकी तरह मस्तक झुका लिया। क्षणभर निमाईने धीरे धीरे कहा—"आज मङ्गलाचरण गया, अब रहने दो। अब सब लोग गङ्गास्ना करने चलो, कलसे पाठका आरम्भ होगा निमाई पण्डितने इस तरह पहला दिन बिताया

दूसरे दिन फिर वही विवश अवस्था उपस्थि हुई। घरसे चलते समय वह रास्तेभर सोचते आ थे कि आज विद्यार्थियोंको अच्छी तरहसे प पढ़ावेंगे। किन्तु पाठशालामें बैठते ही उ संसारी बातोंका ज्ञान न रहा; नियमानुसा विद्यार्थियोंको अध्ययन करानेके बदले वे भगवान्

* 'कल्याण'के पाठक इस बातको जानते हैं कि श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका पहला नाम निमाई पण्डित था। निमाई पण्डित गयाजीसे लौटकर अपने शिष्योंको जो कुछ पाठ पढ़ाना आरम्भ किया था, उसीका दिग्दर्शन इस लेखमें है। यह लेख गौरभक्त स्व शिशिरकुमार घोष महाशय लिखित श्रीअमिय-निमाई-चरितके प्रथम भागके एक अध्यायका अनुवाद है, अनुवादक हैं पं लल्लीप्रसादजी पाण्डेय। श्रीअमिय-निमाई-चरित छः खण्डोंमें पूरा हुआ है। कुछ वर्षों पूर्व बम्बईके 'गांधी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार' पाण्डेयजीसे इस विशाल ग्रन्थका अनुवाद करवाना आरम्भ किया था। दो भागोंका अनुवाद हो भी गया था, परन्तु भण्डार व्यवस्थापकके परलोकवाससे भण्डार उठा दिया गया। दो खण्डोंका अनुवाद भण्डारके मालिक भाई श्रीजमनालाल बजाजके पास रक्खा था, उन्होंने कृपाकर वह हम लोगोंको दे दिया है, इस प्रेमामृत-पूर्ण ग्रन्थको शीघ्र ही गीताप्रेससे प्रकाशि करनेका प्रयत्न हो रहा है। अगले खण्डोंका अनुवाद भी करवाया जा रहा है।

सम्पाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुणोंका कीर्तन करने लगे। उस दिन भी किसीको पाठ नहीं दिया गया। इससे विद्यार्थियोंको रत्ती भर भी उकताहट नहीं हुई। इसका यही कारण था कि निमाईके मुँहसे कृष्णकी कथा बहुत ही मधुर लगती थी। अब वे प्रतिदिन प्रातःकालसे लेकर दोपहरतक श्रीकृष्णकी बातें सुनाते थे और विद्यार्थी लोग कठपुतलीकी तरह स्थिरभाव धारण किये सुनते रहते थे। निमाई पण्डित जिस समय कृष्ण-सम्बन्धिनी बातें कहते थे, उस समय वह एक अद्भुत शक्तिका परिचय देते थे। विद्यार्थी लोग देखते थे कि आवेशमें आ जानेके कारण निमाई पण्डितको बाहरी ज्ञान रत्तीभर भी नहीं है। दूसरी बात यह थी कि निमाईके वाक्योंकी छटा अमानुषिक होती थी। अतएव विद्यानुरागी लोगोंने निमाईकी श्रीकृष्ण-कथामें विद्याका परिचय प्राप्त किया, कविता-प्रेमियोंने उनकी कथामें कवित्वका आस्वादन किया, भक्तोंने उसमें भक्तिका अनुभव किया और प्रेमियोंने उस तरङ्गमें डूबकर सात दिनतक निमाईके मुँहसे इसी तरह कृष्ण-कथा सुनी। हाँ, इस बीच दो चार विद्यार्थी विद्रोही भी हो गये।

किसी किसीने कहा कि हम घर बार छोड़कर इतनी दूर परदेशमें कृष्ण-कथा सुननेको नहीं आये हैं; यहां हम विद्या पढ़ने आये हैं। अध्यापकजीको यह हो क्या गया है? किसीने कहा, पण्डितजीको वह पुराना वायुरोग फिरसे तो नहीं हो गया है? इस तरह अपनी अपनी राय प्रकट करनेके पश्चात् उन लोगोंने एक विचार किया। वे एकत्रित होकर पण्डित गङ्गादासके घर गये और उन्हें प्रणाम करके अपनी दुर्दशा सुनाने लगे। उन्होंने कहा—"निमाई पण्डित जैसा अध्यापक त्रिलोकीमें नहीं है, हम लोग उनपर वैसी ही भक्ति रखते हैं जैसी कि सब लोग भगवान्‌की भक्ति करते हैं; और उनपर हमारा उतना ही प्रेम है जितना कि अपने पितापर। परन्तु वह जबसे गयाजीसे लौटकर आये हैं तबसे एक अक्षर भी नहीं पढ़ाते। पाठशालामें आकर कहा करते हैं कि श्रीकृष्णको भजो। आप हम लोगोंपर कृपा कीजिये और उन्हें बुलाकर समझा दीजिये, जिससे वे हमें पढ़ाना आरम्भ कर दें।"

गङ्गादासजी एक प्रसिद्ध पण्डित हैं। पर कार्यमें एक प्रकारसे नास्तिक हैं। उनकी समझमें शास्त्रका अध्ययन-अध्यापन करना ही मनुष्यका एक मात्र प्रधान कर्म है। निमाईके इस आचरणका वृत्तान्त सुनकर वे ठहाका मारकर हँसने लगे। उन्होंने कहा—"तो यह बात है? निमाई अभीसे साधु हो गया है? आज तीसरेपहर तुम लोग उसे यहाँपर बुला लाना, मैं उसे समझा-बुझा दूँगा।"

प्रातःकाल निमाई पण्डित फिर पाठशालामें पढ़ाने आये, और भाव-विभोर होकर विद्यार्थियोंको सबक़ देनेके बदले उन्हें भगवान्‌के गुण सुनाने लगे। सब लोग स्तम्भित होकर सुनने लगे। थोड़ी देरमें निमाई सचेत हुए। यह सोचनेसे उन्हें लाज लगी कि हम विद्यार्थियोंको पढ़ाते तो हैं नहीं, उन्हें श्रीकृष्णका चरित्र सुनाते हैं। लाजके मारे उन्होंने नीची निगाह कर ली। अन्यान्य दिन इस दशामें वे झटपट छुट्टी करके गङ्गा नहानेको चल देते थे। किन्तु उस दिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, प्रधान छात्रोंकी ओर देखकर उन्होंने पूछा—"तुम लोग हमें सच सच बतलाओ कि हमने कैसी व्याख्या की है।" छात्रोंने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे लोग चुप हो गये। तब निमाई पण्डितने दुबारा पूछा—"मुझे सच सच बतलाओ कि मैं कैसा पढ़ा रहा हूं। मैं समझता हूं कि तुम्हारी पढ़ाई अच्छी तरह नहीं होती।" एक प्रधान विद्यार्थीने उत्तर दिया—'गुरुदेव, आप जैसी व्याख्या करते हैं वही ठीक है। आपकी शक्ति असीम है। जिस शब्दका जो अर्थ करनेकी इच्छा होती है वही आप कर सकते हैं। आपसे कोई कुछ भी पाठ क्यों न पूछे, आप उसीके अर्थमें केवल श्रीहरिके गुणोंकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या करते हैं। आप जो अर्थ करते हैं वही ठीक है। हाँ, जिस उद्देश्यसे हम लोग पढ़ने आये हैं वह अवश्य ही सिद्ध नहीं हो रहा है। जबसे आप गयाजीसे लौटे हैं तबसे एक दिन भी आपने सचेत रह कर पुस्तकके शब्दोंका अर्थ नहीं किया है।"

निमाई पण्डित इससे बहुत ही लज्जित हुए। उन्होंने कहा—"भैया, हमें न जाने क्या हो गया है। श्रीकृष्णके नामके सिवा हम और कुछ भी नहीं पढ़ा सकते।" ज़रा ठहरकर फिर धीरे धीरे कहा—"तुम लोगोंसे सीधी बात कह देना ही ठीक है। भला, हमें वही पहलेका वायु-रोग तो नहीं हो गया है?"

शिष्योंने उत्तर दिया—"इसे हम वायुरोग किस तरह कहें? संसारमें ऐसा कोई भी नहीं, जो आपके किये हुए अर्थका खण्डन कर सके। आपके हृदयमें परमेश्वरकी जितनी भक्ति है, वैसी तो कभी किसीने देखी भी नहीं। यदि वायुरोग होता तो आपकी बातें ऐसी मधुर कैसे हो सकती थीं?"

निमाईने धीरे धीरे कहा—"तुमसे हम एक बहुत ही गुप्त बात कहते हैं। इसे कहीं प्रकट मत करना। तुम्हें हम अपना समझते हैं, इसीसे कहते हैं। जब हम घरसे निकलते हैं, तब मनमें दृढ़ सङ्कल्प करके आते हैं कि आज अवश्य अच्छी तरह पढ़ावेंगे। किन्तु उसी समय एक बहुत ही सुन्दर साँवला बालक सामने खड़ा होकर बाँसुरी बजाने लगता है। इससे हम सुध-बुध भूल जाते हैं और शरीर बेकाबू हो जाता है।" यह कहते कहते निमाईकी देह अवश हो गयी, किन्तु वह बड़ी कठिनाईसे धैर्य धारणकर, पाठशालाकी छुट्टी करके अपने घर गये।

दिनको तीसरे पहर, पण्डित गङ्गादासका सँदेशा पाकर, निमाई पण्डित उनके घर गये। वहां जाकर उन्होंने गुरुको प्रणाम किया। गङ्गादासने आशीर्वाद देकर कहा—"विश्वम्भर, अनेक जन्मोंकी तपस्याके फलसे मनुष्य अध्यापकका पद प्राप्त होता है। तुम नीलाम्बर चक्रवर्तीके दौहित्र और जगन्नाथमिश्रके पुत्र हो तुम्हारे नाना और पिता, दोनों ही विख्यात पण्डित थे। बड़ा परिश्रम करके मैंने तुम्हें पढ़ाया है, और अब तुमने भी मेरा नाम रख लिया है तुमको पढ़ाना सार्थक हुआ है। गौड़-देशभर तुम्हारा यश फैल गया है। तुम्हारी बनायी व्याकरणकी टिप्पणीका धीरे धीरे समाजमें आदर हो रहा है। हमने सुना है कि इस ओरसे हाथ धोकर अब तुम हरिका भजन करने लग गये हो! अच्छा तो क्या तुम्हारे नाना या पिता सभी नरकगामी होंगे? इस पागलपनको छोड़कर कलसे विद्यार्थियों को ध्यान लगाकर पढ़ाओ। तुम्हारे विद्यार्थी और किसीके पास पढ़ने नहीं जाते, इधर तुम भी उन्हें पढ़ा नहीं रहे हो। वे लोग बड़ी कठिनाईमें पड़े हैं बहुत ही उदास और दुखी हैं। इस पागलपनको छोड़ो, तुम्हें मेरी शपथ है, अच्छी तरह पढ़ाना आरम्भ कर दो।"

निमाईने लज्जित होकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया। हाथ जोड़कर उन्होंने गङ्गादाससे क्षमा प्रार्थना की और यह भी स्वीकार किया कि अब अच्छी तरह पढ़ाया करेंगे। सब लोग विद्याकी चर्चा करते-कराते आचार्य रत्नगर्भके दरवाज़े आकर बैठ गये। रत्नगर्भ सिलहटके तो हैं ही, जगन्नाथ मिश्रके पड़ोसी भी हैं। यहां उनके बाहर दरवाज़ेपर योगपट्टके ढँगका चदरा पहनकर निमाई पण्डित शिष्योंके साथ शास्त्रकी चर्चा करने लगे। चार घड़ी रात बीत गयी। विद्यार्थीगण, आश्चर्यान्वित होकर निमाई पण्डितका अद्भुत पाण्डित्य देख रहे हैं। इसी समय आचार्य रत्नगर्भने बड़े ही अच्छे स्वरसे श्रीमद्भागवतका यह श्लोक पढ़ा—

श्यामं हिरण्यपरिधिं नवमाल्यबर्ह,
धातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालक कपोल मुखाब्जहासम् ॥
(श्रीमद्भागवत १०।२३।२२)

श्रीकृष्णके रूप-वर्णनका यह श्लोक ज्यों ही निमाईने सुना त्यों ही उन्हें मूर्च्छा आ गयी। विद्यार्थियोंने उनकी ऐसी दशा पहले कभी देखी न थी। इसका कारण यह है कि विद्यार्थी बाहरी आदमी हैं। इसलिये निमाई बहुत ही चौकन्ने रहते थे कि कहीं विद्यार्थियोंके सामने किसी भावका उदय न हो जाय। किन्तु श्रीमद्भागवतका यह श्लोक सुनते ही वह अपनेको सँभाल न सके, बाण-विद्ध पक्षीकी तरह धूलमें लोट गये।

यह दशा देख शिष्योंने घबराकर उन्हें पकड़ लिया। देखा तो, उनमें जीवनका कुछ भी चिह्न नहीं है। तब वे लोग डरकर मुँहपर पानीके छींटे मारने लगे। बड़ी देरमें निमाईको होश हुआ। अब उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। प्रेमकी तरङ्गमें निमाई पण्डित शान्तिसे न बैठ सके। वह धूलमें लोटने लगे। इतने आँसू गिरे कि धरती भीग गयी। आश्चर्यके साथ सभी देख रहे हैं। वहाँ होकर जो बस्तीवाले निकले वे भी खड़े होकर देखने लगे। किसी किसीने निमाईको प्रणाम किया। धूलमें लोटते लोटते, निमाई पण्डितने कहा—"श्लोक पढ़ो" रत्नगर्भने फिर वही श्लोक पढ़ा। श्लोक सुनते ही निमाई उठकर बैठ गये और फिर पृथ्वीमें गिर पड़े। गिर कर फिर श्लोकको सुननेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु उनके मुँहसे पूरी बात न निकल सकी। वे सिर्फ़ "बोलो, बोलो" ही कहने लगे। श्लोक पढ़नेकी आज्ञा पाकर रत्नगर्भने फिर श्लोक पढ़ा। अब निमाई-ने उठ करके रत्नगर्भको हृदयसे लगा लिया।

आलिङ्गित होनेसे रत्नगर्भजी प्रेम-विह्वल होकर गिर पड़े। निमाई पण्डितके पहले कृपापात्र यही रत्नगर्भ हुए।

रत्नगर्भ कभी तो निमाईके पैर छूते हैं, कभी रोते हैं और कभी श्लोक पढ़ते हैं। वहांपर गदाधर भी थे। उन्होंने देखा कि रत्नगर्भ जितना ही श्लोक पढ़ते हैं, उतना ही निमाई पण्डित अस्थिर होते हैं। निमाईके धूलमें लोटनेसे गदाधरको बहुत ही दुःख होता है। इसलिये उन्होंने रत्नगर्भको श्लोक पढ़ने-से रोक दिया। अब यद्यपि निमाई पण्डित श्लोक पढ़नेकी आज्ञा दे रहे थे तथापि रत्नगर्भ चुप थे। श्लोक नहीं पढ़ते थे।

थोड़ी देरमें निमाईको कुछ चेत हुआ। वह सोनेका-सा रंग धूलमें मलिन हो गया है। शनैः शनैः पूर्णतया सचेत होनेपर निमाई पण्डित धीरे धीरे उठकर बैठ गये और लज्जित होकर कहने लगे—"बतलाओ, भला मैंने क्या चञ्चलता की है?" इसका किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। उनके साथ सब लोग गङ्गा नहाने गये।

अगले दिन, शिष्योंसे परिवेष्टित होकर निमाई पण्डित पाठशालामें बैठे। कलकी अद्भुत घटना देख-कर विद्यार्थियोंने बड़े आनन्दमें रात बितायी। सन्ध्याको निमाईके भावका दर्शन करनेसे शिष्योंके मनमें जो भक्तिका उदय हो आया था, वह अबतक बना है। विद्यार्थियोंने प्रातःकाल देखा कि उनके नवीन अध्यापकजी, अपने बैठनेके स्थानपर, योगासन लगाये बैठे हैं। सुवर्ण-सदृश सुन्दर अङ्गसे महापुरुषों जैसा तेज निकल रहा है। सरल और सुन्दर मुखपर उदासी छायी हुई है; किन्तु आनन्दमय कमल-नयन रोते रोते लाल हो गये हैं। नवीन अध्यापकजी हज़ार चेष्टा करनेपर भी आँसुओंको रोकनेमें समर्थ नहीं हो रहे हैं। इसी सुन्दर मूर्तिका दर्शन विद्यार्थी कर रहे हैं। निमाई-का चरित्र,—ख़ासकर कल रातकी घटना, देख करके इन लोगोंने निश्चय कर लिया है कि हमारे अध्यापकजी या तो साक्षात् शुकदेव हैं या प्रह्लाद अथवा स्वयं नर-नारायण हैं; साधारण मनुष्य नहीं हैं। निमाई पण्डित जिस परमानन्दरसमें निमग्न हैं, उसे भङ्ग करके उनसे साधारण पाठ पढ़नेका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साहस किसी शिष्यको नहीं हो रहा है। इसी समय, चेत हो जानेसे अध्यापक निमाई फिर लज्जित हुए। शिष्योंको सम्बोधन करके उन्होंने कहा—"भाइयो, ऐसा बर्ताव करके मैं तुम लोगोंको ठगना नहीं चाहता। अब मैं तुम लोगोंसे एक भिक्षा माँगता हूं। कृपा करके तुम लोग मुझे छुट्टी दे दो; मैं तुम्हें अब पढ़ा न सकूँगा। मैं तुमसे कह चुका हूं कि ज्यों ही मैं पढ़ानेके लिये तैयार होता हूं, त्यों ही एक साँवला बालक मेरे आगे मुरली बजाने लगता है, इससे मैं सुध-बुध भूल जाता हूं। फिर मेरे मुँहसे, कृष्णके नामके सिवा और कुछ भी नहीं निकलता। अतएव मेरे यहां तुम्हारा पढ़ना विडम्बनामात्र है। मैं शुद्ध मनसे तुम्हें अनुमति देता हूं कि तुम चाहे जहां पढ़नेके लिये जा सकते हो। मुझे मुक्त कर दो।" यह कहकर निमाई पण्डित नीचा मुँह करके रोने और पुस्तकको बाँधने लगे।

सैकड़ों शिष्य ध्यान देकर नवीन अध्यापक महोदयकी बातें सुन रहे हैं। दीन-स्वरसे निमाई जो बातें कह रहे हैं, उसका एक एक अक्षर विद्यार्थियोंके हृदयमें विषैले तीरकी तरह चुभ रहा है। अध्यापकके नेत्रोंमें आँसू देख देखकर विद्यार्थी व्याकुल हो रहे हैं।

विद्यार्थी भी अब धैर्य धारण न कर सके। सबके सब रोने लगे। एक प्रधान शिष्यने रोते रोते हाथ जोड़कर कहा—"गुरुदेव, आपको छोड़-कर हम और किसके पास पढ़ने जायँ? और किसीके पास पढ़नेकी प्रवृत्ति हमें होगी ही किस तरह? जिस तरह स्नेहसे ध्यान देकर आप हमें पढ़ाते हैं वैसे और कौन पढ़ावेगा? आपने हमें जो कुछ पढ़ा दिया है वही बहुत है। आशीर्वाद दीजिये कि उतनेकी ही स्मृति बनी रहे। हमें एक ही बातका बड़ा दुःख है कि अब दिन-रात आपके साथ हम न रह सकेंगे। इसी दुःखका स्मरण करनेसे छाती फटी जाती है।" यह बात कहते कहते सभी शिष्य ज़ोर ज़ोरसे रोने लगे। कोई रोता जाता था और बस्ता भी बाँधता जाता था।

सामने जो शिष्य बैठा था, उसे नवीन अध्यापकने दोनों हाथसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया और उसका माथा सूँघा। जो और और शिष्य वहां बैठे थे उन्हें अपने समीप बुलाया। नवीन अध्यापकका गला भर आया है, इससे बातचीत करनेमें वे असमर्थ हैं। अब उन्होंने प्रत्येक विद्यार्थीको हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघा। सैकड़ों विद्यार्थियोंकी रोदन-ध्वनिसे वह स्थान और उसके आसपासका स्थल पूर्ण हो गया। बड़े कष्टसे कुछ धैर्य धर कर निमाई पण्डितने कहा—"भैया, हम तुम्हारे अध्यापक हैं, आशीर्वाद देनेका हमें अधिकार है तुम लोगोंको हम हृदयसे आशीर्वाद देते हैं कि यदि हमने एक दिन भी श्रीकृष्णका भजन किया हो तो तुम्हारे हृदयमें विद्याकी स्फूर्ति हो। और भाई, विद्याकी ही ऐसी क्या आवश्यकता है! श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण करो, उनका गुण-गान करो और उन्हींके नामको सुनो। जितना पढ़ चुके हो उतना ही बहुत है। आओ, अब सब लोग मिलकर श्रीकृष्णका गुण-गान करें।"

नीचे सिर करके सब शिष्य रोने लगे। निमाई पण्डित किसी तरह अपने हृदयके वेगको रोककर अपना अभिप्राय व्यक्त करने लगे। ज़रासा ठहरकर उन्होंने कहा—"भाइयो, इतने दिन एकत्र रहकर पढ़ा लिखा, अब हमें कृतार्थ करो। एक बार श्रीकृष्णका कीर्तन करके हमारे हृदयको शीतल करो, हमारी इच्छा पूर्ण करो।"

विद्यार्थी लोग भक्तिसागरमें निमग्न हैं। उन्हें भी प्रबल इच्छा है कि ऐसा ही कुछ करके मनके वेगको शान्त करें। निमाईकी यह बात सुन कर उन लोगोंने कहा "गुरुदेव, यह तो बड़ी अच्छी बात है, हम लोग कृष्णका कीर्तन करेंगे। किन्तु हमें यह मालूम नहीं कि श्रीकृष्ण-कीर्तन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किस प्रकार किया जाता है। हमें सिखला दीजिये। इसपर निमाईने कहा, आओ हम लोग कृष्ण-कीर्तन करें।

केदार राग

हरि हरये नमः कृष्णाय यादवाय नमः।
(यादवाय केशवाय गोविन्दाय नमः।)
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥

निमाई पण्डित हाथसे ताल देकर और तालका सम बतलाकर विद्यार्थियोंको यह गीत सिखलाने लगे। विद्यार्थी भी ताली बजाकर गीत सीखने लगे। गाना सीधा-सादा है, विद्यार्थियोंने सहज ही सीख लिया। बीचमें बैठकर निमाई पण्डित गाने लगे और उनके चारों ओर बैठकर छात्र भी तालियां बजाकर उनका साथ देने लगे। क्रमसे प्रेमकी तरङ्ग उठने लगी। सब लोग आनन्दसे उन्मत्त होने लगे। कोई धूलमें लोटने लगा तो कोई खड़ा होकर नाचने लगा। बड़ा गुल-गपाड़ा हुआ। तमाशा देखनेके लिये वहां बहुतसे आदमी जमा हो गये। किन्तु वहां जो लीला हो रही थी उसे देखकर तमाशा देखना भूल गये। भक्तिसे गद्गद होकर सभी प्रणाम करने लगे। निमाईको भक्तिमें लीन देखकर सभी अकचका गये। सभी कहने लगे, पहले किसे मालूम था कि संसारमें ऐसी भी भक्ति है।

श्रीनवद्वीपमें पहले पहल यही नाम-संकीर्तन हुआ। निमाईने ही संसारी लोगोंको बतलाया कि नाच-गाकरके भी श्रीभगवान्के चरण-कमल प्राप्त किये जा सकते हैं। पहले कोई भी यह बात नहीं जानता था। वासुदेव घोषने इसीलिये एक पदमें कहा है कि निमाई पारस हैं, जिनके स्पर्शसे लोहेके सदृश मनुष्योंका भी उद्धार हो जाता है।

श्रीभगवान्को प्राप्त करनेके लिये याग-यज्ञ, पूजा-तपस्या, भजन और प्रार्थना आदि अनेक उपाय पहलेसे थे। अब निमाईने एक और रास्ता खोल दिया। वह यह कि श्रीभगवान् आनन्दमय हैं और उनका भजन भी आनन्दमय है। "हरि हरये नमः" का कीर्तन पहलेपहल शके १४३० में हुआ था। निमाईके भक्त अब भी उसी स्वरमें यह गीत गाया करते हैं। इस गीतको श्रीनिमाईके कण्ठसे जो शक्ति प्राप्त हुई थी, वह शक्ति इसमें इस समय उसी परिमाणमें न हो तो न सही, फिर भी बहुत अधिक अंशमें है। इस गीतको गाकर श्रीनिमाईके शिष्य लोग अबतक आनन्दसे नाचते और पृथ्वीमें लोटते हैं। किसी किसीको मूर्च्छा भी आ जाती है।

निमाईके कितने ही विद्यार्थी उसी दिनसे उनके भक्त हो गये। कुछ लोगोंने उदासीन मार्गको भी ग्रहण कर लिया।

अभिलाषा

ये ही अभिलाषा नाथ आवें क्षणभरको पास नैन-पाँवड़े सों उर-अंतर बिठार लूँ,
प्रेम-अश्रुओंसे पद-पद्म-जुगुल धोइ जीवन जगतमें "सुमन" अपनो सुधार लूँ।
जानेकी इच्छा जनावैं जब नाथ निज नैनन-कपाटनको सत्वर ही मार लूँ,
प्रेम-मद-माते ह्वै मोहनकी मूरति पै माया-मोह-ममता त्यागि अपनेको वार लूँ॥

रामनारायण शुक्ल साहित्यरत्न "सुमन"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरस्कार और दण्ड

'सब कुछ ईश्वरमें अर्पण कर दो।' 'इस संसाररूप भयानक अग्नि-मय कड़ाहेमें जहां कर्तव्यरूप अग्नि सबको दग्ध किये डालती है—ईश्वरार्पणरूप अमृतको पीकर सुखी हो जाओ।' हम केवल उनकी इच्छानुसार कार्य कर रहे हैं, पुरस्कार या दण्डसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि तुम पुरस्कारकी इच्छा रखते हो तो उसके साथ ही तुम्हें दण्ड भी सहना पड़ेगा। दण्डसे बचनेका एकमात्र उपाय है-पुरस्कारका त्याग करना। दुःखसे छूटनेका एकमात्र उपाय है—सुखके भावको छोड़ देना, कारण दोनों एक ही सूत्रमें पिरोये हुए हैं। एक ओर सुख है तो दूसरी ओर दुःख है; एक ओर जीवन है तो दूसरी ओर मृत्यु है। मृत्युको लांघनेका एकमात्र उपाय है—जीवनकी आशाका परित्याग। जीवन और मृत्यु एक ही वस्तु है, एक ही वस्तुकी केवल दो विभिन्न दिशाएँ हैं। अतएव 'दुःख-शून्य सुख' और 'मृत्यु-शून्य जीवन' ये शब्द विद्यालयके बालकोंके लिये सुननेमें भले ही अच्छे हों, परन्तु विचारवान् पुरुष देखते हैं कि यह सब कुछ विरोधी वाक्यांशमात्र हैं, इसलिये वे दोनोंका ही त्याग कर देते हैं। जो कुछ भी करो, उससे किसी प्रकार प्रशंसा और पुरस्कारकी आशा न करो। यह बहुत ही कठिन कार्य है। हम यदि कोई अच्छा काम करते हैं तो तुरन्त उसके लिये प्रशंसा चाहने लगते हैं। शुभ कार्यमें चन्दा देते हैं, पर साथ ही समाचारपत्रोंमें अपना नाम देखनेकी इच्छा करते हैं। इस प्रकारकी वासनाका फल अवश्य ही दुःख है। जगत्के सर्वश्रेष्ठ पुरुष प्रायः लोगोंको अपने लिये कुछ न जनाकर ही चले गये हैं। ··· ··· सर्वश्रेष्ठ पुरुष अपने ज्ञानसे किसी नाम-बड़ाईकी खोज नहीं करते। वे जगत्में अपना भाव दे जाते हैं, वे अपने लिये न तो कोई दावा करते हैं और न अपने नामपर कोई सम्प्रदाय या धर्म-प्रणाली ही स्थापन कर जाते हैं। उनकी प्रकृति ही इन सबकी विरोधिनी है। वे शुद्ध सात्त्विक हैं वे कोई भी ऐसी चेष्टा नहीं कर सकते, वे तो केवल प्रेममें गल जाते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

चित्र

एक ग्वाल-बाल मण्डलीके साथ जंगलोंमें,
दौड़ता यहां वहां है कृष्णका सजीव चित्र।
एक कंसकी सभामें शत्रु-मित्रको अनेक
रूपमें दिखा रहा है कृष्णका सजीव चित्र।
एक भारतीय युद्धमें प्रसिद्ध कूटनीति—
का चला रहा है चक्र कृष्णका विचित्र चित्र।
एक राजसूय-यज्ञमें खुशीसे ब्राह्मणोंके,
पैर धो रहा है 'विष्णु' कृष्णका गरीब चित्र।

गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण, "विष्णु"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मज्ञानका सर्वोत्तमत्व
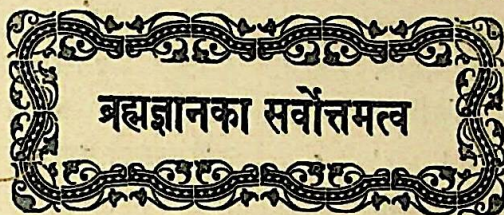
(लेखक—श्री राम स्वामीजी)

वर जङ्गम सब प्राणि-पदार्थोंका अधिष्ठानरूप सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है। इस ब्रह्मका साक्षात्कार किये बिना कोई भी प्राणी दुःख तथा भयसे आत्यन्तिक मुक्ति नहीं पा सकता।

कोई भी जड़ पदार्थ सुखी नहीं है; तृण, लता, वृक्ष, गुल्म सुखी नहीं हैं, अनेक प्रकारके जलचर सुखी नहीं हैं; कृमि, कीट, पतङ्ग और सर्पादि सुखी नहीं हैं, नानाविध पक्षी सुखी नहीं हैं; विविध पशु सुखी नहीं हैं, इस पृथ्वीमें निवास करनेवाले ब्रह्मज्ञानरहित मनुष्य भी सुखी नहीं हैं और भुवर्लोकसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त लोकोंमें अवस्थित ब्रह्मज्ञानहीन देवता भी यथार्थतः सुखी नहीं हैं। इस जगत्में जो भाग्यशाली व्यक्ति परम सुखस्वरूप ब्रह्मका अभिन्न भावसे अनुभव करनेमें समर्थ हुआ है, एकमात्र वही परम सुखी है।

अन्न, वस्त्र, गृह, क्षेत्र, स्वर्ण, रौप्य, पशु, वाहन, पदमर्यादा और कीर्त्ति—इनमें परम सुख देखनेमें नहीं आता; विवेकी मनुष्यको ये सब पदार्थ विशुद्ध सुखसमन्वित नहीं, किन्तु विष-मिश्रित मिष्टान्न-के सदृश दुःख-युक्त प्रतीत होते हैं।

मनुष्यकी बालावस्था दुःखवाली है, युवावस्था दुःखवाली है और वृद्धावस्था भी दुःखवाली है। अज्ञानी स्त्री दुखी है, अज्ञानी पुरुष दुखी है और नपुंसक भी दुखी है। हे दुःख! तू अज्ञानी जीवोंमें सर्वत्र सर्वदा व्याप्त हो रहा है।

कुरूप मनुष्य दुखी है, सुरूप दुखी है; अल्प कुटुम्बवाला दुखी है, बहुकुटुम्बवाला दुखी है; पुत्र-हीन दुखी है, पुत्रवान् दुखी है; निर्धन दुखी है, धनाढ्य दुखी है; प्रभावशून्य दुखी है, प्रभावशाली दुखी है; विद्याविहीन दुखी है, और विद्वान् भी दुखी है। इस प्रकार इस पृथ्वीपर सूक्ष्मदृष्टिद्वारा जहाँ देखिये, वहाँ सर्वत्र सर्वदा दुःख दुःख और दुःख ही प्रतीत होता है।

सामान्य दृष्टिसे देखिये, तो वृक्षादिसे कीट सुखी है, कीटादिसे जलचर सुखी है, जलचर-से पशु-पक्षी सुखी है, पशु-पक्षीसे मनुष्य सुखी है, मनुष्यसे अन्तरिक्षस्थ देवता सुखी है, अन्तरिक्षस्थ देवतासे स्वर्गीय देवता सुखी है, स्वर्गीय देवतासे महर्लोकवासी देवता सुखी है, महर्लोकवासी देवतासे जनलोकनिवासी देवता सुखी है, जन-लोकनिवासी देवतासे तपोलोकवर्त्ती देवता सुखी है, तपोलोकवर्त्ती देवतासे सत्यलोकस्थित देवता सुखी है। बुद्धिके सत्त्वगुणकी वृद्धिके कारण वह सब सुख अनुभवमें आते हैं। ब्रह्मज्ञानद्वारा अनुभूत ब्रह्मानन्दरूप महासागरके सम्मुख सत्य-लोकका सुख एक क्षुद्र बिन्दु-तुल्य है।

तामस सुखकी अपेक्षा राजस सुख श्रेष्ठ है, राजसकी अपेक्षा सात्त्विक श्रेष्ठ है, सात्त्विककी अपेक्षा शुद्ध सात्त्विक श्रेष्ठ है, और शुद्ध सात्त्विक सुखकी अपेक्षा निरुपाधिक ब्रह्मानन्द श्रेष्ठ है। यह ब्रह्मानन्द ही सर्वोत्तम सुख है। मनुष्य-जन्म पा कर विवेकी अभिन्नभावसे केवल इसीको प्राप्त करनेके योग्य गिना जाता है।

जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकार दूर होता है, जैसे अग्निके सामीप्यसे शीत दूर होता है, जैसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चिन्तामणिकी प्राप्तिसे दारिद्र्य दूर होता है, और जैसे अमृतपानसे समग्र रोगोंकी निवृत्ति होती है, वैसे ही ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिसे मनुष्यके त्रिविध तापकी आत्यन्तिकी निवृत्ति हो जाती है।

इस धराधाममें मनुष्यजन्म प्राप्त होकर विवेकी मनुष्यको पूर्वकथनानुसार ब्रह्मज्ञान ही सम्पादन करना उचित है। प्रचुर धन, सर्वोत्कृष्ट पद-गौरव, अथवा बहुशास्त्रोंके अध्ययनसे सर्व दुःखोंकी निवृत्ति तथा परमानन्दकी प्राप्ति नहीं होती। एकमात्र सुदृढ़ ब्रह्मज्ञानसे ही सर्वदुःख-निवृत्ति पूर्वक परमानन्द-प्राप्ति सिद्ध होती है।

ब्रह्मसे भिन्न जिस जिस प्राणि-पदार्थमें, उसे सत्य मानकर अन्तःकरणकी वृत्ति जाती है, वहाँ वहाँ वह न्यूनाधिक दुःखका ही अनुभव करती है। इस विश्वमें एक ब्रह्म ही ऐसा स्थान है, जहाँ जानेसे अन्तःकरण-वृत्ति दुःखरहित परमानन्दका अनुभव करती है।

हे मन! लौकिक ज्ञानोंकी तृष्णा परित्याग कर। ऐसे ज्ञानोंका पार नहीं, वे ज्ञान सत्य सुख देनेवाले नहीं हैं, बहुत दिनों तक ऐसे ज्ञानोंकी प्राप्तिके लिये परिश्रम किया, परन्तु तुझे केवल परिश्रमजन्य तथा नैराश्यजन्य दुःखका ही अनुभव हुआ। इसलिये अब जिस ज्ञानसे जीवके सर्व दुःखों[illegible] प्रशान्ति होकर उसे परमानन्दका लाभ होता[illegible] उसी ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये सर्वदा प्रयत्नशी[illegible] रह।

रूप, यौवन, धन, अधिकार, स्त्री, पुत्र और वि[illegible] इन सबकी अपेक्षा ब्रह्मज्ञान ही श्रेष्ठ है, क्यों[illegible] ये रूपादि जीवको स्थायी सुख देनेवाले नहीं [illegible] स्थायी सुख देनेवाला तो ब्रह्मज्ञान ही है।

ब्रह्मज्ञान —कुरूपका परम सौन्दर्य है, वृद्ध[illegible] पूर्ण यौवन है, निर्धनका महाधन है, निरधिकार[illegible] महाधिकार है स्त्री-हीनकी रूप-यौवन-गुणसम्प[illegible] स्त्री है, पुत्ररहितका सुशील पुत्र है, और विद्या[illegible] हीनकी परमा विद्या है।

नानाविध तापोंसे प्रतप्त जीवोंके लि[illegible] ब्रह्मज्ञान ही परम शीतल कल्पवृक्ष है। निराधार[illegible] वह परमाधार है, और अनाथ तथा अशरण[illegible] सनाथ तथा शरणयुक्त करनेवाला है। हे मन एतादृश सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञानका सम्पादन करने[illegible] लिये तू साधनसम्पन्न होकर, संशय विपर्य[illegible] छोड़ सर्वदा अधिकसे अधिक प्रयत्न किया कर

दिव्य ज्योति

छिप गयी तमकी काली निशा
खुल गया स्नेह-भवनका द्वार।
गगन-थल काँप उठा थरथरा
मूर्ति-छवि दीख पड़ी साकार॥
हृदयके अन्तरतममें एक
ज्वलित ज्वालासी शक्ति जली।
मोह-ममताकी तुहिनावली
पलकमें पाला जैसी गली॥
ज्ञानके उठे भाव-उद्गार
तुर्तमें भरा महा-भव-कूप।
विश्व आँगनमें देख पड़ा
तुम्हारी दिव्य ज्योतिका रूप॥ —मोहन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(प्राकृत और आत्म-धर्म-भेद)
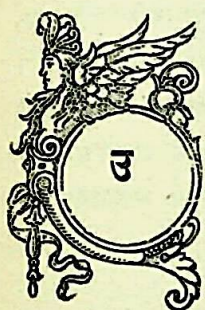
स मनुष्य-समाजने, जो अभी अभी सभ्यताकी प्रगतिमें आया है, "प्राकृतिक-धर्म" के समझनेमें जितनी बड़ी भल की है वैसी किसी अन्य विषयके समझनेमें नहीं की। उसने 'प्राकृतिक-धर्म"को समझते समय प्रकृति-वैचित्र्य तथा उसकी विभिन्नताको एक ओर रख दिया है। यही उसकी उपर्युक्त महान् भूलका कारण है।

× × ×

उसका कथन है कि "प्राकृतिक-धर्म" को पशुओंसे सीखो ; क्योंकि उनका (पशुओंका) आचरण प्रकृति (Nature) के अनुकूल है। परन्तु वे ऐसा कहते हुए इस बातको भूल जाते हैं कि पशुओंकी प्रकृति मानव-प्रकृतिसे सर्वथा भिन्न है, उनका(पशुओंका)राज्य दूसरा है और मनुष्योंका दूसरा। मनुष्य अपने धर्मका आदर्श पशुओंको चुने, यह उसकी पाशविक-प्रवृत्तिके सिवा और क्या कहा जा सकता है ?

× × ×

'प्रकृति' शब्दसे हमें दो अर्थोंका बोध होता है। एक स्वभाव, और दूसरा यह समस्त दृश्यमान जगत्, अर्थात् त्रिगुणात्ममयी-प्रकृति। पहले अर्थमें प्राकृतिक-धर्मका अर्थ है 'स्वाभाविक-धर्म'। तब 'स्वाभाविक-धर्म" पशु और मनुष्यका जहां तक एक है वहां तक पशु और मनुष्यमें अणु-मात्र भी भेद नहीं है। यदि मनुष्यत्वको पशुत्वसे पृथक् करना है तो मनुष्यको अपना धर्म भी पृथक् करना होगा।

× × ×

कहनेके लिये संसारमें दो वस्तु हैं, अर्थात् सूर्य और उसका प्रतिबिम्ब। पुरुष और प्रकृति, ब्रह्म और माया, कृष्ण और राधा, जिस प्रकार यह दो हैं, उसी प्रकार इनके राज्य भी दो हैं। एक चेतन-राज्य और दूसरा जड़राज्य। पशु-जगत् जड़-राज्यमें है, "वह" प्रकृतिकी गोदमें है, "वह" केवल सूर्यके प्रतिविम्बवत् है, प्रकृतिके अधीन है, परन्तु मनुष्य-जगत् चेतन-राज्यमें है। वह उसकी रश्मि है। उसको (मनुष्यको) कुछ जन्म-जात स्वतन्त्रता प्राप्त है, क्योंकि मनुष्य पाशविक-प्रकृतिके अनुकूल चलनेको नहीं, वरन् उसके विरुद्ध घोर युद्ध कर विजय-प्राप्त करनेको उत्पन्न हुआ है।

× × ×

जब हम मनुष्यकी (अपनी) प्रकृतिमें घुसते हैं तब उसमें प्रतिहिंसा, काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या आदि भावोंका अवलोकन करते हैं। क्या कोई मनुष्य कह सकता है कि ये उसके भीतर प्राकृतिक नहीं है ? यदि नहीं है तो क्या उसने इनको दूर करनेके लिये कठिन ताप (तपस्या) नहीं सहे ? घोर युद्ध नहीं किया ? बड़े बड़े बाँके-वीर, जो सिंहका मुख हाथोंसे चीरकर फेंक सकते हैं, इस अपनी प्रकृतिके युद्धमें परास्त होते हैं। तब कैसे कह सकते हैं कि हम पशुओंसे "प्राकृतिक-धर्म"को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीखें, जब कि हमें अपनी ही प्रकृतिके विरुद्ध संग्राम करना है।

× × ×

विद्युत्-शक्तिसे आटेकी चक्की चल रही है, आरेकी मशीन लकड़ी चीर रही है, कारखानेमें सैकड़ों यन्त्र चल रहे हैं। वही विद्युत् "बल्ब" में आकर प्रकाश फैला रही है, वही पङ्खा झल रही है, वही रोगियोंको नीरोग कर रही है और वही प्राण भी हर रही है। इसी प्रकार एक ही आत्म-तत्त्व विभिन्न शरीरोंमें कार्य कर रहा है। जिस प्रकार "बिजली" काँचके ग्लासके अतिरिक्त किसी पत्थरके गोलेमें बन्द करनेपर प्रकाश नहीं दे सकती वैसे ही "आत्म-तत्त्व" एक होनेपर भी अपने उपयुक्त 'बल्ब'को छोड़कर अन्यत्र प्रकाश नहीं करता। मनुष्य-शरीर ठीक उसके उपयुक्त है। इस यन्त्रसे वह चारों ओर देखता है और अपनी ओर भी। और वह आत्म-धर्मको प्रकृतिके ऊपर अधिकृत करना चाहता है, परन्तु प्राकृतिक प्रलोभन इसमें बाधक हैं। सृष्टि-रचनाका मूल कारण भी यही है, क्योंकि वह अव्यक्त आत्म-तत्त्व इस व्यक्त-प्रकृतिपर आत्म-धर्मसे व्यक्त होकर अधिष्ठित होना चाहता है।

× × ×

मन्द मन्द प्रातःसमीर भोले शिशुकी तरह क्रीड़ा करता बह रहा था। अभी अभी उदयाचलपर भगवान् मरीचि-मालीकी कुछ सुनहली किरणें उषाके मृदु-अरुण-अञ्चलपर बेल-बूटे चित्रित कर रही थीं। उस समय एक नवयुवक सुमनाङ्कित लतिकाओंसे आच्छादित सुन्दर निकुञ्जमें टहल रहा था। यकायक उसके कानोंमें पायजेबके घुँघरुओंकी मधुर-ध्वनि पड़ी। वह चौंका। कुछ क्षण पश्चात् उसके सामने एक षोडश-वर्षीया-सुन्दरी आ उपस्थित हुई। वह चन्द्र-मुखी थी। बिम्बा-फल जैसे अरुण-अधर कमनीय-कान्तिके साथ दमक रहे थे। उसके मृग जैसे विशाल लजीले नेत्रोंमें अद्भुत आकर्षण था। वह नवयुवक उसका सौन्दर्य देखकर अवाक् रह गया। उसकी प्राकृतिक-पिपासा नेत्रोंके कार्यसे आगे बढ़ी। नवयुवक हृष्ट-पुष्ट सुन्दर था, सुन्दरी भी उसको, गति-रुद्ध होकर एकटक देखती रह गयी। दोनोंके शरीर-यन्त्रमें कामरूपी विद्युत् दौड़ गयी। ऐसी अवस्थामें प्रकृतिवादी सिवा इसके और क्या कह सकता है कि यह "प्राकृतिक-धर्म" है और इसकी गतिका अवरोध करना अधर्म है। परन्तु "आत्म-धर्म" इसके विरुद्ध है। उस नवयुवकने "आत्म-धर्म"का पाठ पढ़ा था वह शीघ्र सावधान हो गया। उसने काम-प्रवृत्तिके विरुद्ध युद्ध कर आत्म-विजय प्राप्त की और इसके अनन्तर उसने अपने हृदयमें एक असीम-आनन्द और अपूर्व आत्मबलका अनुभव किया।

× × ×

साधारण लोग आत्म-धर्मीको देखते हैं। मोटा-सोटा पहनते, रूखा सूखा टुकड़ा खाते और कष्ट-मय जीवन व्यतीत करते तथा कभी कभी नेत्रोंमें जल भरे हुए। तब वे कहते हैं कि "आत्म-धर्म" पाखण्ड है, "रपट पड़ेकी राम-गङ्गा है" क्योंकि धर्ममें कष्ट और दुःखका क्या काम? परन्तु वे नहीं समझते कि यही तो उसका प्रकृतिके साथ घोर युद्ध है, क्योंकि "वह" सत्य, आत्म-सत्यकी प्राप्तिके लिये त्रिलोकीका वैभव भी त्याग सकता है। उसको सत्य-रस-पानमें जो आनन्द आता है, उसका सहस्रांश भी लौकिक-सुखमें नहीं है। वह कहा करता है—

"शालो ज़र बफ़्त मुबारिक तुम्हें दौलतमन्दों !
हमको कम्बलमें दुशालेका मज़ा आता है॥"

× × × ×

उसके आँसू दुनियाकी चाहमें नहीं निकलते। उनका मूल्य संसारका कोई पदार्थ नहीं चुका सकता। वे बहते हैं विश्वकी हित-कामनामें, या प्रकृतिके तीक्ष्ण-बाणोंसे जर्जरित होकर दयालु इष्टदेवके चरणाम्बुजोंमें। वह "आत्म-लक्ष्य"से नहीं डिगता। उसका विराम अनन्त आनन्दसिन्धुके अतिरिक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्यत्र नहीं है। मनुष्यका पाशविक-हृदय उन आँसुओंको नहीं पहचान सकता। "आत्म-प्रेमी"के सम्मुख वे अबोध-शिशुकी आँखोंकी तरह बरस पड़ते हैं। वे प्रकृतिके लिये नहीं, वरन् आत्माके लिये निकलते हैं।

× × × ×

जिस धर्मका पालन करना आरम्भमें सरल, काठिन्यहीन और सुखद है वह "प्राकृत" है तथा जो आरम्भमें कठिन और स्थूलरूपेण कष्टप्रद है वह "आत्म-धर्म" है। एक ओर मखमलके गद्दोंपर नवयुवती रमणीका आलिङ्गन है और दूसरी ओर हरित-तृणपूर्ण-भूमिका वक्षः-स्थल। पहलेका परिणाम अन्धकारमें पतन—पवित्र आत्म-आलोककी विहीनता है, परन्तु दूसरेका परिणाम प्रमाके महदुन्नत शिखरपर विहार दिव्यालोकमें विचरण है। पहला मखमलके गद्दोंपर पड़ा हुआ भी अन्तरसे सन्तप्त रहता है परन्तु दूसरा कँकरीली भूमिपर पड़ा हुआ भी आनन्दपूर्ण अमृत-सिन्धुमें किलोलें करता रहता है। यही प्राकृत और आत्मधर्म-भेद है।

(श्रीपद-रज- शिशु')

श्राद्ध और विज्ञान

(गतांकसे आगे)

(लेखक—श्रीयुगलकिशोरजी 'विमल' सीनियर एडवोकेट)

मनुष्य-जीवन पाँच कोशोंका समुदाय है १—अन्नमय कोश (स्थूल शरीर), २—प्राणमय कोश, ३—मनोमय कोश, ४—बुद्धिमय कोश और ५—आनन्द-मय कोश। इन पांचों कोशोंको वैज्ञानिक रीतिसे सिद्ध करनेकी चेष्टा इसलिये न करते हुए कि, यह एक सर्वथा स्वतन्त्र विषय है, यहां केवल इतना बतलाना ही आवश्यक है कि साधारण मनुष्यके मरनेपर चारों शेष कोश अन्नमय स्थूलकोश (शरीर) से बाहर निकल आते हैं। इन चारोंकी गति उस समय भूतगति कहलाती है। स्थूलकोशको जला देनेपर प्राणमय कोश भी नष्ट हो जाता है और शेष तीनों कोश उस गतिको पाते हैं जिसको प्रेतयोनि कहते हैं। इस योनिमें मनोमय कोशकी प्रधानता होती है। अतः मृत्युको प्राप्त होनेवाला मनुष्य अपनी वासनाओंके कारण इस गतिमें दुःख-सुख उठाता रहता है। जब वासनाओंका बन्धन (उनके फल नहीं) दूर हो जाता है, तब यह तीसरा कोश भी लय हो जाता है। तत्पश्चात् शेष दोनों कोश देवगतिको प्राप्त करते हैं। बुद्धिमय कोशके पूर्ण होनेपर केवल आनन्दमय कोश अकेला रह जाता है। इस गतिको ईशगति कहते हैं। ईशगतिमें जीव किसी दुःख-सुखका अनुभव न करता हुआ सूर्यलोक पहुँच जाता है। वहांसे सूर्यकी किरणों-द्वारा उल्टा आता है और वर्षाके साथ पृथ्वीपर गिरता है। पृथ्वीसे अन्नमें प्रवेश करता है। अन्न बनकर वह पुरुषके देहमें जाता है। पुरुषके देहसे वीर्यरूपमें स्त्रीके गर्भमें पहुँचता है और दस मासके पश्चात् मानव-देह धारण किये इस दुनियामें प्रकट होता है। जो पुरुष मृत्यु पाकर मुक्त हो जाते हैं, उनके पाँचों कोश एक ही साथ नष्ट हो जाते हैं और वह उपर्युक्त किसी गतिको भी नहीं भोगते।

इस विचारसे यह प्रतीत होता है कि मरने पर मनुष्यकी प्रधानतः दो गतियां हो सकती हैं (१) मोक्ष हो जाना, (२) उसके लिये मरण-जन्मका चक्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बना रहना। पहली गतिमें जीव सब दुःखों और वासनाओं-से मुक्त हो जाता है। उसके लिये किसी दुःख या वासनाका लेश भी नहीं रहता, जिससे छुड़ाने या छूटनेकी आवश्यकता हो। अतः यह प्रत्यक्ष है कि उसके लिये श्राद्ध-यज्ञ करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती, न श्राद्धका प्रभाव ही उस पर पड़ सकता है, क्योंकि उसके सूक्ष्म और कारण-शरीर भी नष्ट हो जाते हैं। उसकी व्यक्ति-गति मिट जाती है। वैज्ञानिक परिभाषामें संकल्पकी बिजलीसे प्रभावित होनेके लिये कोई रिसीवर ही नहीं रहता। दूसरी गतिमें मरनेवाले मनुष्यको उन चारों दशाओं या योनियोंमें जाना पड़ता है, जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है। भूत-योनि शरीरका दाह होते ही समाप्त हो जाती है, अतः मरनेवालेका इस योनिमें बहुत कम टिकाव होता है। इस समय श्राद्ध-यज्ञका प्रश्न पैदा ही नहीं होता। हां, पिण्डदान किया जाता है। प्रेत-योनिमें रहनेका समय मरनेवालेकी वासनाओंपर निर्भर रहता है। जिसका मन जितना अधिक वासनाओंमें फँसा हुआ होता है, उसे उतना ही समय अधिक लगता है और उतना ही वह अधिक कष्ट उठाता है। इस योनिमें पितृको यह अनुभव बना रहता है कि वह दुःखमें है या सुखमें। वह स्वर्गलोक, नरकलोक आदिमें निवास करता हुआ न कोई कर्म करता है और न अपने कर्मोंके फलसे कायिक दुःख-सुख उठाता है, बल्कि उसके दुःख-सुख केवल मानसिक होते हैं। जो लोग अपने जीवन-में शुभ सकाम कर्म करते हैं, वह कर्मानुसार स्वर्ग या पितृलोकमें उन शुभ कर्मोंके मानसिक सुख भोगते हैं। जो अपने जीवनको अशुभ कर्मोंमें बिता देते हैं, वह नरकमें अपने पापोंके बदले अनेक प्रकारके मानसिक दुःख सहन करते हैं। इस तरह सदाचारी और दुराचारी दोनों ही अपने सूक्ष्म शरीर से अपने कर्मोंके मानसिक फल भोगकर वास-नाओंके शान्त होनेपर देवगतिको प्राप्त करते हैं। अतः यह प्रत्यक्ष है कि इस गति या योनिमें श्राद्ध-यज्ञद्वारा सहायता करके वासनाओंसे उनकी छुट्टी करायी जा सकती है और इस गतिमें रहनेवाले पितरोंका श्राद्ध होना चाहिये।

कुछ सज्जनोंका यह मत है कि श्राद्ध केवल पितृलोक-निवासी पितरोंका होना चाहिये, क्योंकि वही आवाहनसे यज्ञमें उपस्थित हो सकते हैं। परन्तु सिद्धान्तपर विचार करनेसे प्रकट होता है कि ऐसे पितरोंकी अपेक्षा नरकनिवा-सियोंको अपनी सन्तानकी सहायताकी अधिक आवश्यकता है, क्योंकि वे दुःखमें होते हैं और साथ ही मानव-शरीर-रहित होनेसे अपने कष्ट-निवारणका उपाय करनेमें भी असमर्थ होते हैं। यह सत्य है कि प्राचीन इतिहासोंसे श्राद्ध-यज्ञमें पितृलोकसे आनेवाले पितरोंका उल्लेख मिलता है, परन्तु इतिहासमें केवल विशेष प्रसिद्ध व्यक्तियोंका ही कथन होता है। साधारण मनुष्योंको इतिहासमें कोई स्थान नहीं मिलता। इसलिये इतिहासके आधारपर परिणाम निकालना भ्रमजनक हो सकता है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो स्वर्गलोक या पितृलोकनिवासी पितरोंको श्राद्धसे उतना लाभ नहीं हो सकता जितना श्राद्ध करनेवाली उन-की सन्तानको उनसे हो सकता है क्योंकि वह श्राद्ध-कर्त्ताओं-से उत्तम गतिमें होते हैं और उत्तम शक्तियोंका उपयोग कर सकते हैं। मरकर वही मनुष्य प्रेत-योनिमें अधिक कालतक रहता है जिसकी वासनाएं इतनी प्रबल होती हैं कि वह उसे मनोमय कोश त्यागकर बुद्धिमय कोशमें जानेसे रोकती हैं। उसकी वासनाओंका कष्ट भी बड़ा प्रबल होता है। वह स्थूल शरीरधारी न होनेके कारण अपनी वासनाओंको शान्त करनेका यत्न भी नहीं कर सकता। उसके कष्ट-निवारणके लिये श्राद्ध-यज्ञ ही एकमात्र आधार होता है। जो सज्जन यह शंका करते हैं कि जीवात्मा एक पलभर भी शरीररहित नहीं रह सकता और इसीलिये मरनेवालेका मृत्यु होते ही पुनर्जन्म हो जाता है, अतः प्रेत-योनि आदि गतियां केवल भ्रममात्र हैं। वह स्वयं ही भ्रममें हैं। धार्मिक सिद्धान्तोंको दृष्टिगोचर न करते हुए भी यह शंका निर्मूल है। कारण यह कि एक तो जो मनुष्य मरते ही पुनर्जन्म धारण कर लेता है उसे भी एक शरीरसे दूसरे शरीरमें प्रवेश करनेमें कुछ न कुछ समय अवश्य ही लगता होगा और जब क्षणमात्रके लिये भी जीव बिना देह-के रह सकता है तो अधिक समय तक भी उसका निर्देह रहना सम्भव सिद्ध हो जाता है। दूसरे जब आवागमनमें रहनेवाला जीवात्मा अमर और अनादि है और एक प्रलयसे दूसरी सृष्टि पर्यन्त वह निश्चय ही निर्देह रहता है, तब सृष्टिके समयमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसका बिना देह रहना असम्भव नहीं हो सकता। तीसरे, भारतीय ही नहीं बल्कि यूरोप और अमेरिकावाले भी जीवात्माओंको बुलाकर उनसे बातचीत करते हैं। इससे भी जीवात्माओंका निर्देह रह सकना सिद्ध होता है। जबतक यूरोप और अमेरिका प्रेत-योनिको नहीं मानते थे तबतक भारतवर्षके प्रेत-सम्बन्धी इतिहास भी कल्पित समझे जाते थे, परन्तु अब तो प्रेत-योनि एक सर्वमान्य गति है और प्रेतोंके मनुष्योंपर प्रकट होकर उनसे अपनी वासनाओंकी शान्तिके लिये प्रार्थना करने या मनुष्योंको सतानेके इतहास भी मिलते हैं, इन इतिहासोंसे यह सिद्ध होता है कि प्रेतोंको वासनाएं कितना कष्ट देती हैं और मनुष्य उनकी वासनाओंको शान्त करके उनको प्रेत-योनि और उस योनिके दुःखोंसे मुक्त कर सकता है। अतः ऐसी प्रेत-गतिमें रहनेवाले पितरोंको ही श्राद्धकी आवश्यकता होती है।

इस आलोचनाके पश्चात्, कहना नहीं होगा कि जो मनुष्य अपना चोला छोड़कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है या स्वर्ग लोक वा पितृलोकमें जाकर निवास करता है या दूसरी देह धारण कर लेता है उसे सिद्धान्तानुसार श्राद्धकी आवश्यकता नहीं रहती! ऐसा होनेपर भी नियम यही है कि प्रत्येक-मरनेवालेका श्राद्ध किया जाय क्योंकि मरनेपर किस मनुष्य-की क्या गति होती है, इसका पता लगना कठिन होता है। दूसरोंका तो कहना ही क्या है, उसके अपने सगे-सम्बन्धी भी पूर्णतया यह नहीं जान सकते कि जीवनमें उसके वास्तविक भाव क्या रहे हैं। विशेषतः उसकी सन्तान उसके उन कर्मोंसे बिल्कुल ही अपरिचित रह सकती है जो उसकी उत्पत्तिसे पूर्व या उसकी बाल्यावस्थामें किये गये हों। अतः प्रत्येक दशामें यह उत्तमोत्तम कर्त्तव्य है कि प्रत्येक पितृका श्राद्ध किया जाय। यदि पितृको श्राद्धकी आवश्यकता नहीं है तो भी इस शुभ कर्मसे कमसे कम श्राद्धकर्त्ता ही को लाभ पहुँच जाता है, क्योंकि यह यज्ञ हृदयकी शुद्धि, बुद्धिकी स्थिरता और संकल्पकी दृढ़ता बढ़ानेका एक बहुत अच्छा साधन है।

इस विवेचनके पश्चात् यह शंका कि, पितृ यदि किसी देहको छोड़कर श्राद्ध-यज्ञमें आता है तो उसका वह शरीर मुर्दा हो जाना चाहिये, किसी समाधानकी अपेक्षा हीं करती। क्योंकि दूसरी देह धारण करनेके बाद वह पितृ श्राद्धमें नहीं आता।

रहा यह सन्देह कि मानव-सम्बन्ध देहके साथ होते हैं और देह छूटनेपर पितृका सम्बन्ध अपनी सन्तान आदिसे छूट जाता है, इसलिये श्राद्ध करनेका ऋण मरनेवालेके सम्बन्धियोंपर डालना सिद्धान्तके प्रतिकूल है। इसका उत्तर यह है कि केवल स्थूल शरीरके छूट जानेसे जीवकी व्यक्ति-गति समाप्त नहीं हो जाती। जबतक जीवके लिंग और कारण-शरीर (जिनका वर्णन आगे होगा) बने रहते हैं, तब तक जीवकी व्यक्ति-गतिकी भी स्थिति रहती है और उसका अपने सम्बन्धियोंसे सम्बन्ध भी रहता है। वह स्थूल शरीरके नाश होनेपर भी अपने आपको वही व्यक्ति समझता है जो मरनेसे पहले थी। यदि वह किसीपर प्रकट होता है तब भी उसी नाम और रूपसे होता है, जो जीवनमें उसके थे और अपने स्थूल शरीरके सम्बन्धियोंको उसी प्रकार अपना सम्बन्धी मानता है। जब उसकी मुक्ति हो जाती है या किसी अन्य योनिमें जाकर वह अपनी पिछली व्यक्ति-गतिको भूल जाता है, तभी उसका सम्बन्धियोंसे भी सम्बन्ध टूटता है। अतः जिन जिन गतियोंमें श्राद्ध-यज्ञकी सिद्धान्तानुसार आवश्यकता है, उन सबमें वह व्यक्ति-गति बनी रहती है और इसी कारण श्राद्धका ऋण भी सन्तानपर रहता है।

जो जो पितृ श्राद्ध-यज्ञसे लाभ उठानेके अधिकारी हैं, उनमें इस बातका कोई भेद नहीं रहता कि मरनेसे पूर्व वह पुरुष थे या स्त्री। ऐसे सब पितृ श्राद्धके समान रीतिसे आश्रयभूत होते हैं। इसलिये पुरुष और स्त्री दोनोंका ही श्राद्ध करना चाहिये। जो लोग यह कहते हैं कि स्त्रीको श्राद्ध करनेका अधिकार नहीं है, तो पानेका क्यों है? वह यह विचार नहीं करते कि श्राद्ध-यज्ञ करनेकी योग्यता दूसरी वस्तु है और उसके फल पानेका अधिकार भिन्न वस्तु है। दोनोंके सिद्धान्त भिन्न भिन्न हैं। स्वभावतः स्त्रीका मन पुरुषके मनसे अधिक चञ्चल होता है। उसके संकल्पकी बिजली भी दुर्बल होती है। अतः पुरुषकी अपेक्षा उसमें श्राद्ध करनेकी योग्यता कम होती है। परन्तु यह असत्य है कि उसमें वह कदापि नहीं होती। इसी कारण गरुड़पुराणका वाक्य है कि श्राद्ध-यज्ञ करनेके अधिकारी पुरुषोंके होते हुए स्त्रीको श्राद्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करनेका अधिकार नहीं है, परन्तु उनके अभावमें वह भी श्राद्ध कर सकती है।

कुछ लोग कहते हैं कि जो मनुष्य वंशहीन मर जाता है उसके श्राद्ध करनेके लिये कोई सन्तान नहीं होती और वह भी पितृगतिमें किसी न किसी भांति अपनी गति देर करता है तब सन्तान छोड़कर मरनेवालेकी सन्तान क्यों श्राद्ध करनेका कष्ट उठाये ? परन्तु यह बिलकुल ऐसी बात है कि एक मनुष्यको सर्वथा अकेले और दरिद्री होनेके कारण बेबसीसे अनेक प्रकारके कष्ट सहन करते देखकर कोई अपने जीवित माता. पिता या भ्रातासे यह कहे कि अमुक मनुष्य बिना धन और बिना सेवा-शुश्रूषाके अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, इसलिये आप भी ऐसा ही करें। मैं आपकी सहायता क्यों करूं ? जिस मनुष्यमें मनुष्यत्व है वह कभी यह सहन न करेगा कि उसके गुरुजन या पितृ जीते जी या मरनेके पश्चात् दुःख उठाते रहें और वह उनकी सहायता न करे। सहायतासे पितृके दुःख और उन दुःखोंके भोगनेका समय दोनों ही घट जाते हैं। जो पितृ बेचारा ऐसा अभागी होता है कि कोई भी उसकी सहायता करनेवाला नहीं होता, वह किसी न किसी भांति अपना काल काटता है और काल ही उसके दुःखों और चिन्ताओंको शनैः शनैः जीसे भुला देता है। उसको सतानेवाली उसकी वासनाएं हताशतामें समय व्यतीत करते करते स्वयं ही लय हो जाती हैं क्योंकि कोई भी दुःख या वासना अविनाशी नहीं है। इसीलिये श्राद्ध करनेका ऋण भी तीन पीढ़ी तक स्थित रहता है। तीन पीढ़ी बीतनेमें इतना समय लग जाता है कि यह मान लिया जाता है कि इतने समयमें पितृकी वासनाएं शान्त हो गयी होंगी। इस समयमें पहले पितृके अपने पुत्र, फिर पुत्रोंके संन्यास आश्रममें जाने या उनके मरनेपर उसके पौत्र और तत्पश्चात् इसी प्रकार उसके परपौत्र श्राद्ध-यज्ञद्वारा उसका कष्ट निवारण करते हैं।

यदि यह कहा जाय कि ब्रह्माण्डमें खानपानके पदार्थोंके अनेक भण्डार भरे पड़े हैं और पितृ उनके द्वारा अपनी आवश्यकताएं पूर्ण कर सकता है, तो यह ठीक नहीं है। बहती हुई नदियोंका जल प्यासे पितृकी प्यास नहीं बुझा सकता, न वृक्षोंपर लटकते हुए फल ही उसकी भूख मिटा सकते हैं। वह बिजलीकी उस मशीनके समान होता है जिसमें बिजलीकी लहर दौड़ानेवाले तार न हों। ऐसी मशीनके लिये सारे विश्वकी बिजलीके भण्डारका भाव और अभाव बराबर होता है। जबतक उसमें तार न जोड़े जायं, बिजली पैदा नहीं हो सकती। इसीभांति पितृके लिये संसारके सर्व पदार्थोंका भाव और अभाव समान ही होता है जबतक कि श्राद्धरूपी तारोंसे उनको पितृ तक न पहुंचाया जाय।

(४) इस बातका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये कि श्राद्ध किस ढङ्गसे पितरोंपर अपना प्रभाव डालते हैं, यह जानना ज़रूरी है कि "वासना" और "दुःख" या "सुख" क्या वस्तु हैं ? निश्चय ही विषयोंके भोगनेकी इच्छाका नाम "वासना" है। वासनाको पूरा करनेवाले भोगका भोगना "सुख" है। वासनाके पूरा न होनेसे मनमें जो अशान्ति उत्पन्न होती है, या विषयभोगसे देहमें जो पीड़ा पैदा होती है उसीको "दुःख" कहते हैं। इन तीनों शब्दोंके अर्थ जान लेनेपर यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं रहती कि वासनाके शान्त होजानेसे ही सब मानसिक दुःख-सुख मिट जाते हैं। वासना मनकी एक गति है। मन प्राकृत वस्तु है। इसी कारण वासना भी प्राकृत है। इसको शान्त करनेके अनेक उपायोंका शास्त्रोंमें वर्णन है। परन्तु सब उपायोंका सारभूत एक ही है और वह यह कि मनके प्राकृत परमाणुओंमेंसे तमोगुण और रजोगुणके परमाणुओं को इतना घटाया जाय और सत्त्वगुणके परमाणुओंको इतना बढ़ाया जाय कि तीनोंके परमाणु समान हो जायँ। इन तीनों गुणोंके समान होते ही वासनाका नाश हो जाता है। अपने या पराये दृढ़ और शुभ संकल्पकी बिजलीसे तमोगुण और रजोगुण-नामक बिजलियोंके घटाने और सत्त्वगुण-नामक बिजलीके परमाणुओंके बढ़ानेमें सहायता मिलती है। शुभ संकल्पमें सत्त्वगुणी बिजलीके परमाणु होते हैं। उनके पितृमें प्रवेश करनेसे पितृमें सत्त्वगुणी बिजलीके परमाणु बढ़ जाते हैं। जब उन सत्त्वगुणी बिजलीके परमाणुओंका परिमाण पितृके तमोगुणी वा रजोगुणी बिजलियोंके परमाणुओंके परिमाणके बराबर हो जाता है, तब वह एक दूसरेको अपनी ओर खींच कर परस्पर मिल जाते हैं। मिलन होते ही वह एक दूसरेके विरुद्ध बिजलियोंके परमाणु होनेके कारण एक दूसरेको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भस्म करके अपना अन्त कर लेते हैं। शास्त्र-परिभाषामें इन्हीं तीनों गुणोंके समता प्राप्त करनेपर पितृकी वासनाओंका नाश होना कहलाता है। श्राद्ध-यज्ञमें शुभ संकल्पकी सत्त्वगुणी बिजलीसे पितरोंकी वासनाओंवाली तमोगुणी और रजोगुणी बिजलियोंको इसी विधिसे नष्ट किया जाता है। वासनाओंके नष्ट होनेसे पितरोंके दुःख दूर हो जाते हैं, यही श्राद्धका भाव है।

इस विषयमें यह संशय हो सकता है कि मरनेपर मानव-देह समाप्त हो जाती है, इसलिये देहमें स्थित रहनेवाले मन और मनमें रहनेवाली वासनाओंका देहके साथ ही अन्त हो जाना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता। कारण यह है कि स्थूल शरीर छोड़नेपर भी जीव निर्देह नहीं होता। शरीर तीन प्रकारके होते हैं—कारण, सूक्ष्म और स्थूल। जीवात्माकी वह व्यक्ति गति जो प्राकृत परमाणुओंसे रहित होती है उसका, कारण शरीर कहलाती है। उसकी वह गति जिसमें उसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और छठे मनसे (जो प्राकृत होते हैं) गांठ बंध जाती है, उसका सूक्ष्म या लिंग शरीर मानी जाती है और उसका दृष्टिगोचर होनेवाला शरीर स्थूल-शरीर कहलाता है। मुक्ति पानेवाले मनुष्योंके मरनेपर उनके यह तीनों ही शरीर छूट जाते हैं। परन्तु साधारण जीवोंके स्थूल-शरीर छूटनेपर भी शेष दोनों शरीर स्थित रहते हैं। इसलिये साधारण मनुष्योंमें स्थूल शरीर छूट जानेपर भी मन और मानसिक वासनाएं मौजूद रहती हैं, जैसा कि मनोमय कोश-गतिका वर्णन करनेमें ऊपर लिखा जा चुका है। श्राद्धद्वारा इन्हीं वासनाओंको शान्त करनेका उद्योग किया जाता है।

श्राद्ध और कर्म-मीमांसा।

इतना विवेचन करनेके पश्चात् अब हमें केवल यही सिद्ध करना रह जाता है कि श्राद्धके इस प्रभावको सत्य माननेमें कर्म-मीमांसामें कोई अड़चन नहीं पड़ती और हम अब इसीकी ओर ध्यान देते हैं। विज्ञानी और शास्त्रकार दोनों ही इस बातको मानते हैं कि प्रत्येक कर्मको पूरा करनेके लिये उसकी जो दो शाखाएं होती हैं अर्थात् उसकी जो मानसिक और शारीरिक क्रिया होती है वही दोनों शाखाएं कर्मके फलमें भी पायी जाती हैं। सांसारिक न्याय और व्यवहारमें साधारणतः मानसिक क्रियाके बदले किसीको कोई दण्ड या प्रतिकार नहीं मिलता, बल्कि इनका सम्बन्ध केवल शारीरिक क्रियाके साथ रहता है। परन्तु ईश्वरका न्याय त्रुटिरहित और कल्याणपूर्ण है। उसमें कोई भी क्रिया दण्ड या प्रतिकारसे रहित नहीं है। जैसी क्रिया होती है वैसा ही फल मिलता है। मानसिक क्रियाओंका फल मानसिक सुख-दुःख होता है और शारीरिक क्रियाओंका फल शारीरिक दुःख-सुख। श्राद्ध यज्ञ करनेवालेके मानसिक संकल्पकी शक्ति पितरोंके शारीरिक कर्मोंके फलोंपर कोई प्रभाव नहीं डालती। कर्मका शारीरिक भोग पितृके हेतु श्राद्ध-यज्ञ करनेपर भी वैसाका वैसा ही बना रहता है। वह शारीरिक भोग उसको अगली योनिमें शरीर धारण करके अवश्य भोगना पड़ता है। हां, श्राद्ध-यज्ञके फलसे पितृका मानसिक दुःख छूट जाता है। इसी मानसिक दुःखके छुड़ानेके लिये श्राद्ध किया जाता है। ऊपर कहा जा चुका है कि श्राद्धकी सहायताकी आवश्यकता केवल उसी पितृको होती है जो प्रेत-योनिमें होता है। प्रेतयोनिमें मनोमय कोश प्रधान होता है। इसी कोशके नष्ट हो जानेपर प्रेतकी प्रेतयोनिसे मुक्ति होती है। यह कोश मानसिक होता है। वासनाओंके मानसिक दुःख ही इसकी स्थितिमें कारण होते हैं। अतः श्राद्ध-यज्ञ इस कोशको नष्ट कर सकता है और पितृको प्रेतयोनिसे छुड़ाकर अगली गतियोंमें पहुंचाता है। इन गतियोंको भोगकर पितृ पुनः शरीर धारण करके अपनी शारीरिक क्रियाओंके फल भोगता है। श्राद्ध-यज्ञ किस प्रकारसे पितृपर अपना प्रभाव डालता है, इसका कथन करते हुए जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उससे यह स्पष्ट है कि श्राद्ध-यज्ञ पितृकी वासनाओंको शान्त करनेमें केवल उसके मनोमय कोशके तमोगुणी और रजोगुणी परमाणुओंको सत्त्वगुणी परमाणुओंसे पराजित करानेमें सहायक होता है। इसलिये यह सिद्ध है कि मनोमय कोशको नष्ट कराते हुए भी श्राद्ध-यज्ञ कर्म-मीमांसामें कोई बाधा नहीं डालता। बाधा होनेका जो भ्रम होता है वह तत्त्व न जाननेसे उत्पन्न होता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके दो सीधे-सादे उदाहरण इस भ्रमका निवारण कर सकते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि प्रत्येक वस्तु ऊपरसे गिरकर पृथ्वी पर आती है। यदि पृथ्वी तक पहुँचनेसे पहले ही वह किसी अन्य वस्तु (छत आदि) से टकरा जाय, तो वह पृथ्वीकी ओर गिरनेके बदले उल्टी चटख कर ऊपरको उछल जाती है। परन्तु उसके ऊपर उछलनेसे हम यह नहीं कह सकते कि उपर्युक्त सिद्धान्त झूठा हो जाता है। इसी प्रकार यह एक दूसरा वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि कोई वस्तु एक बार जङ्गम होकर स्थावर नहीं होती, जबतक कि कोई शक्ति उसकी जङ्गमताको नष्ट न कर दे। परन्तु हम देखते हैं कि गेंदको एक बार बलपूर्वक लुढ़काने पश्चात् भी वह किसी व्यक्त शक्तिकी रुकावटके हुए ही बिना अपने आप ही लुढ़कना बन्द हो जाती है। इससे सिद्धान्तको कोई हानि नहीं पहुंचती। सिद्धान्त दोनों उदाहरणोंमें सत्य रहता है, परन्तु एक दूसरी शक्ति जो चाहे व्यक्त हो या अव्यक्त, एक ऐसा परिवर्तन पैदा कर देती है कि उसके कारण सिद्धान्तका फल सम्मुख नहीं आने पाता और ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धान्त ही असत्य हो गया। श्राद्ध-यज्ञद्वारा कर्म-मीमांसाकी भी ठीक यही दशा होती है। श्राद्ध-यज्ञ कर्म-मीमांसामें विघ्न न डालता हुआ पितरोंकी मानसिक दशामें ऐसा परिवर्तन पैदा कर देता है जिससे कर्म-मीमांसाके असत्य हो जानेका भ्रम उत्पन्न होता है। परन्तु यह निरा भ्रम ही होता है और कुछ नहीं।

तिथि नियत करनेके सिद्धान्त

यह संशय भी किया जाता है कि श्राद्ध-यज्ञ उसी तिथिको क्यों किया जाता है कि जिस तिथिको पितृका देहान्त होता है? और सारे पितरोंके श्राद्ध आश्विन मासके कृष्ण-पक्षमें क्यों किये जाते हैं? यह मर्यादा क्यों नहीं बनायी गयी कि जब चाहे तभी श्राद्ध किया जा सकता है। इसके दो उत्तर हैं (१) संसारके सारे कार्य बन्धनद्वारा होते हैं। जबतक किसी कार्यके लिये समय नियत नहीं होता, तबतक मनुष्यसे उसका पूरा होना बड़ा ही कठिन होता है। समय नियत नहीं होता तो मनुष्य जीवन भर अवसर ही ढूंढ़ता रहता है और मरते दमतक भी उसे अवसर हाथ आना दुर्लभ हो जाता है। इसी नियमानुसार यदि श्राद्धके लिये समय नियत नहीं होता तो श्राद्ध-यज्ञकी कभी पूर्ति ही न होती (२) संसारका नियमबद्ध और अचूक चक्र [illegible] चलता रहता है। दिनके पीछे रात और रातके पीछे [illegible] का क्रम बराबर जारी है। ऋतुओंका परिवर्तन होता [illegible] है। बिजलीके परमाणुओंके सिद्धान्तानुसार यह प[illegible] भी बिजलीके परमाणुओंके परिवर्तनसे होते हैं। [illegible] शीतलता बढ़ानेवाले परमाणु बढ़ जाते हैं, तब ही [illegible] काल आ जाता है। जब उष्णता बढ़ानेवाले परमाणु[illegible] की अधिकता होती है तब गर्मी आ मौजूद होती [illegible] और जब जलके परमाणुओंकी अधिकता होती है, [illegible] वर्षाकाल आ जाता है। साथ ही प्रत्येक ऋतुमें [illegible] बार बहुत कुछ एकहीसे परमाणु प्रतिवर्ष रहते हैं। [illegible] अतिरिक्त मनुष्यकी वासनाओंपर भी ऋतुका प्र[illegible] अवश्य पड़ता है। यह ऐसा नियम है कि जिसको [illegible] करनेमें कोई भी नाहीं नहीं कर सकता। इसलिये मनु[illegible] मृत्युके समय जैसे परमाणु विद्यमान होते हैं, उनका प्र[illegible] मरनेवालेपर ज़रूर पड़ता है और उनका निवारण [illegible] वर्ष उसी तिथिके आनेपर उसी प्रकारके परमाणु[illegible] उपस्थितिमें उत्तमोत्तम रीतिसे हो सकता है। [illegible] अतिरिक्त जो जो पितृ सिद्धान्तानुसार [illegible] अधिकारी हैं, वह श्रीमद्भगवद्गीता आदि जैसे [illegible] ग्रन्थोंके कथनानुसार केवल अँधेरे मार्गसे [illegible] चन्द्रलोक तक जा सकते हैं। चन्द्रमाका प्रकाश तिथि[illegible] साथ साथ घटता बढ़ता रहता है। जब चन्द्रमा [illegible] चक्र लगाकर उसी स्थानपर आता है, जहां वह उसी ति[illegible] को गत वर्षमें था, तब पितरोंको भी उसके उजि[illegible] सूक्ष्म परमाणुओंकी समानतासे यह पता लग जाता है [illegible] आज उनके देहान्तकी तिथि है। इसलिये वह भी [illegible] यज्ञके आवाहनकी प्रतीक्षा करते हैं। ऐसी प्रतीक्षाकी [illegible] संकल्पकी बिजलीका प्रवाह उनको जल्दी बतला देता है [illegible] उन्हें श्राद्ध-यज्ञमें बुलाया जा रहा है और वह शीघ्र [illegible] आनेके लिये तैयार हो जाते हैं। इन कारणोंसे उसी तिथि[illegible] श्राद्ध करना उचित समझा गया है, जिस तिथिको पि[illegible] देहान्त होता है। यह ठीक है कि प्रतिवर्ष उस ति[illegible] परमाणुओंकी गति बिल्कुल समान नहीं होती, परन्तु [illegible] बहुत कुछ समानता रहती है या कमसे कम समा[illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहनेकी आशा रहती है । अतः तिथि नियत करनेका नियम बड़ा उत्तम है ।—

प्रत्येक पितृके वार्षिक श्राद्धसे अतिरिक्त पितृ-जातिके श्राद्ध आश्विनमासके कृष्ण-पक्षमें भी किये जाते हैं। यह पक्ष साधारणतः कनागत (कन्यागत) के नामसे ख्यात है। कारण कि उन दिनोंमें सूर्यदेव कन्या राशिमें होते हैं। यह पक्ष वर्षा ऋतुके अन्त और जाड़ेके आरम्भके मध्यमें आता है। वर्षा हो चुकनेके कारण उन दिनोंमें वायुमण्डल बड़ा स्वच्छ होता है । वायु मण्डलसे जलके परमाणु जो बिजली-के परमाणुओंको ग्रहण करके संकल्पकी बिजलीके प्रवाहको रोकनेवाले होते हैं, दूर हो चुके होते हैं। अतः संकल्पकी बिजलीके परमाणुओंको पितरोंतक पहुँचनेके लिये उन दिनोंमें बड़ा निर्विघ्न मार्ग मिलता है और संकल्प सहजमें सफल हो जाता है। ऐसी दशामें यह पितृपक्ष श्राद्ध-यज्ञके लिये विशेषतासे उपयोगी है । इस पक्षमें दूसरी बार श्राद्ध करनेका यह प्रयोजन है कि यदि परमाणुओंकी प्रतिकूलताके कारण या किसी अन्य कारणसे तिथिवाले दिनका श्राद्ध फलदायक न हो, तो इस पक्षमें किया हुआ श्राद्ध ऋतुकी उत्तमता और श्राद्ध करते रहनेके अभ्यासके कारण संकल्प-शक्तिके बढ़ जानेसे अपना फल अवश्य दिखलावे और प्रति-वर्ष कमसे कम एक बार पितरोंकी तृप्ति कर दे ।

अन्तिम निवेदन

लेख बहुत बड़ा हो गया है। मैं समझता हूं कि इसे और विस्तृत करनेकी आवश्यकता नहीं है । जो कुछ ऊपर लिखा गया है उससे श्राद्ध-यज्ञका वैज्ञानिक होना सिद्ध हो जाता है । इस यज्ञके सम्बन्धमें जितनी शंकाओंका मुझे ज्ञान था, या जितनी शंकाओंका सनातनधर्म-प्रतिनिधि-सभा लाहोरके द्वारा मुझे पता लगा, उन सबका समाधान इस लेखमें किया जा चुका है। यदि और कोई शंकाएं हैं तो उनका भी इन्हीं सिद्धान्तोंद्वारा निवारण हो सकता है। आशा है कि जो सज्जन निर्पक्ष होकर इन सिद्धान्तों-पर विचार करेंगे वह अवश्य ही श्राद्ध-मीमांसाको माननीय समझेंगे। इस लेखमें जो त्रुटियां मिलें, उन्हें सज्जनगण केवल क्षमा ही नहीं करें बल्कि मुझे बतलाकर कृतार्थ करें ।

रे प्राणी !

रे प्राणी ! तू मायामें फँस भूल रहा है अपनी राह ।
सप्त-वैरियोंसे बँध, प्रभुसे हटा रहा है निशिदिन चाह ॥
अरे ! डूबकर हृद-सागरमें तू ले प्रभुकी सच्ची थाह ।
निर्विकार जब तू होगा तब वे पकड़ेंगे तेरी बाँह ॥

व्यर्थ हुआ है तू तो पागल,
क्यों रह रह भरता है आह ।
अरे ! स्वामिके रहते कैसी
जलन, वेदना, अन्तर्दाह ? ॥

अवन्तविहारी माथुर "अवन्त"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्त-गाथा

भक्त गोपाल चरवाहा

उत्तर-प्रान्तकी कमलावती-नाम्नी नगरीमें एक ग्वाला रहता था, उसका नाम था गोपाल। जैसा नाम, वैसा ही उसका काम भी था—गायें चराकर उन्हींसे आजीविका चलाना। गोपाल न तो पढ़ा-लिखा था और न कभी उसने कोई कथा-वार्ता ही सुनी थी। आचार-विचार भी वह नहीं जानता था। ऊपरके आचार-विचारोंमें कोई महत्त्व भी नहीं है। सच्चा आचार है अपने आचरणोंको भगवान्‌के अनुकूल रखना, और सच्चा विचार है निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन करना। जबतक मनुष्य इस प्रकारके आचार-विचारसे सम्पन्न नहीं होता, तबतक वह भगवान्‌का प्रियपात्र नहीं बन सकता। गोपाल इसी तरहका शुद्ध आचार-विचारी था, वह दिनभर गायोंको साथ लिये जंगलमें घूमता। घरमें स्त्री-पुत्र थे, परन्तु वह उनकी कोई विशेष चिन्ता नहीं करता। न कभी घर जाता। दुपहरको स्त्री छाक पहुँचा देती। गोपाल रूखी-सूखी खाकर पशुओंके साथ पशुकी भाँति विचरता। उसमें सबसे बड़ा एक सद्गुण यह था कि उसका श्रीहरिके पवित्र नाममें बड़ा विश्वास था, श्रीहरि-नामको वह परम कल्याणरूप समझता और सुबह शाम बड़े प्रेमसे नामोच्चारण करता! वास्तवमें श्रीहरिनामका प्रेमी ही सबसे ऊंचा महात्मा है।

तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

तुलसी जाके बदनतें, धोखेहु निकसत राम।
तिनके पगकी पगतरी, मोरे तनुको चाम॥
नीच जाति श्वपचहु भलो, जपत निरन्तर नाम।
ऊंचो कुल केहि कामको, जहां न हरिको नाम॥

× × ×

दिन जाते देर नहीं लगती। गोपालकी उम्र लगभग पचास वर्षकी हो गयी। बराबरीवाले उसकी दिल्लगी उड़ाते हुए ताना मारते कि "यों राम-राम रटनेसे वैकुण्ठके विमानका पाया हाथ नहीं आनेका" गोपालको ऐसा ताना मन-ही-मन बहुत बुरा लगता, पर वह कुछ भी जवाब नहीं देता। एक दिन किसी राहचलते सन्तने दिल्लगी उड़ानेवालोंका यह ढंग देखकर उनसे कहा—"भाइयो"! तुम लोग बड़ी गलती कर रहे हो, जो गुरुद्वारा समझकर सच्चे मनसे भगवान्‌का पावन नाम लेता है वह अनायास ही इस दुःखमय भवसागरसे तर जाता है। उसको बड़े बड़े राजा महाराजाओंके सुखकी तो बात ही क्या है, ब्रह्मलोकके सुखसे भी अनन्त गुण अधिक परम सुखरूप परमात्माके परमधामकी प्राप्ति होती है। यदि यह बूढ़ा चरवाहा बिना समझे भी भगवान्‌का नाम लेता है, तो भी प्रभुके नामकी ऐसी महिमा है कि इसको नामके प्रतापसे परम-धामका सीधा मार्ग बतानेवाले गुरु अवश्य मिल जायंगे। जिस प्रकार बिना समझे भी अग्निका स्पर्श हो जानेपर मनुष्य जल जाता है, उसी प्रकार भगवान्‌का नाम भी सारे पापोंको भस्म कर डालता है। यदि कोई मूर्ख आदमी बिना सोचे-समझे यों ही भगवान्‌का नाम लेता रहे तो उसपर दया करके सच्चा ज्ञान बतलाकर परमार्थके पथपर आगे बढ़ा देनेवाले कोई-न-कोई महात्मा उसे अवश्य मिल जाते हैं और अन्तमें निश्चय ही उसका उद्धार हो जाता है।"

सन्तकी बातें सुनकर दिल्लगी उड़ानेवाले लोग कुछ शरमा गये। गोपाल भी इन सारी बातोंको सुन रहा था। सन्तकी वाणी, उसका स्वरूप और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवन्नामकी महिमाका गोपालके हृदयपर कुछ दूसरा ही असर हुआ। उसने पास आकर सन्तके पैर पकड़ लिये और गुरु-दीक्षा देनेके लिये प्रार्थना की। सन्तकी अवस्था गुरु बननेकी भावनासे बहुत ऊंची उठ चुकी थी, वह भगवत्-प्रेमकी मस्तीमें विचरा करते थे। चरवाहेकी प्रार्थना सुनकर स्वाभाविक दयासे उन्होंने कहा, "देख, भाई! मुझसे तो गुरु बननेका काम होगा नहीं, परन्तु तुझे गुरुकी अवश्य ही आवश्यकता है। जैसे अनुभवी केवट बिना नाव नहीं चलती, इसी प्रकार भव-सागरकी भयानक तरंगोंसे बचाकर जीवन-नौकाका सञ्चालन करनेके लिये भी अनुभवी गुरु अवश्य चाहिये। अतएव तुझको भी उपयुक्त सद्गुरुकी शरण होकर अपनी जीवन-नौकाका डाँड़ उनके हाथोंमें सौंप देना चाहिये। फिर तू बिना किसी भयके सुखपूर्वक और शीघ्र ही अपार संसार-समुद्रके परले पार पहुंच जायगा। फिर तू भी सच्चा साधु बन जायगा और कृपासिन्धु भगवान् दया करके तुझे दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे। भाई गोपाल! इसी तरह अबतक अनेक लोगोंका उद्धार हो चुका है। इस राहसे समय समयपर बहुत अच्छे साधु महात्मा आया-जाया करते हैं, कोई-न-कोई मिल ही जायँगे। जिनके दर्शनसे पापोंकी वासना नष्ट हो जाय, हृदयमें सात्त्विक भाव उत्पन्न हों, जिनके शब्द सुनते ही मनमें अद्भुत आनन्द हो, और जिनके चरण-स्पर्शसे चित्तमें भगवत्प्रेमकी बिजलीसी दौड़ जाय, उन्हींको गुरु बना लेना।"

गोपालको साधुकी बात सुनकर और यह जानकर, कि मुझको भी प्रभुके दर्शन हो सकते हैं, बड़ा ही आनन्द हुआ। उसका हृदय उत्साहसे भर गया। सन्त तो इतना कहकर अपनी राह चल दिये। गोपालने गुरु करना निश्चय कर लिया। उसने अपनी इच्छा इष्ट-मित्रोंको सुनायी, उन्होंने कहा, "ऐसा गुरु तुझे मिलेगा कहां?" गोपालने सरलतासे कहा, "मिलेगा क्यों नहीं, सन्त कह गये हैं न, कि इस रास्ते बहुतसे साधु महात्मा आया-जाया करते हैं, कोई-न-कोई मिल ही जायगा।" उन्होंने लक्षण भी तो बतला दिये हैं, मैं तुरन्त पहचान लूंगा। गुरु मिलनेपर मैं उन्हें ताजा-ताजा दूध पिलाऊंगा, तब वे मुझपर राजी हो जायंगे। मैं कहूंगा, गुरुजी! मैं तुम्हारे बहुतसे ज्ञानको नहीं समझ सकूंगा, मुझे तो बस, एक ही बात बतला दो, मैं जी-जानसे उसका पालन करूंगा, मुझसे बहुत झंझट नहीं हो सकेगा। गुरुदेव मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे अवश्य अपनालेंगे।" इष्टमित्र गोपालकी बात सुनकर हँसने लगे।

गोपाल अब गुरुकी बाट देखने लगा। ज्यों ज्यों दिन बीतते थे त्यों ही त्यों उसकी उत्कण्ठा भी बढ़ रही थी। अभी तक उसको केवल गायें चरानेका ही एक काम था, अब एक नया काम और पल्ले बँध गया। गोपाल बार बार राजपथपर जाकर बैठ जाता, आते जाते लोगोंके चेहरेकी ओर टकटकी लगाकर देखा करता। राहचलते लोगोंसे पूछता कि "आपने इधर किसी सन्तको आते देखा है?" कभी पेड़ोंपर चढ़कर दूरसे देखता। इस प्रकार उसका मन गुरुके लिये बहुत ही व्याकुल रहने लगा। वह कभी कभी अधीर होकर रोने लगता। क्रमशः उसकी आतुरता बढ़ती गयी। अब उसे तनिकसी भी चैन नहीं है। आँखोंके आँसू कभी सूखते ही नहीं। सच्ची चाह पूरी होते देर नहीं लगती। 'जेहिकर जेहिपर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू।' हृदयमें सच्ची उत्कण्ठा हो और अधीरता बढ़ जाय तो ऐसे प्रेमी पुरुषको शिष्य बनानेके लिये भगवान् स्वयं गुरुदेव बनकर पधार सकते हैं। सच्ची लगन होनी चाहिये।

आतुर गोपालको अब गुरु मिलनेमें देर नहीं हुई, भगवान्‌की प्रेरणासे एक परम भागवत सन्त उसी ओर चले, जहां गोपाल गुरुकी खोजमें बैठा था। गोपाल तो प्रतीक्षामें था ही, महापुरुषको दूरसे देखते ही उसके हृदयमें आनन्द छलकने लगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी कुछ विलक्षण स्थिति देखकर वह तुरन्त पुकार उठा कि "अहाहा! मुझे भवसागरसे पार पहुंचानेवाले गुरुदेव आ रहे हैं।" गुरुदेवको ताजा दूध पिलाना होगा, अतएव गोपाल दौड़कर गाय दुहने बैठ गया, उसके मनमें अनेक प्रकारकी मनोरथ-तरंगें उछलने लगीं। इतनेहीमें वह शान्त, शिष्ट, सौम्य, आनन्द और तेजोमयी मूर्ति समीप आ गयी। गोपाल गाय दुहना बीचमें ही छोड़कर दौड़ा। उसके एक हाथमें दूधका बरतन और दूसरेमें गायें हांकनेका डण्डा था। इसी स्थितिमें गोपाल पुकारने लगा, "महाराज! ठहरो, ठहरो,! तनिकसा दूध तो पी जाओ!" आतुर आवाज़ सुनकर साधु ठहर गये, इतनेमें गोपालने उनके पास पहुंचकर उनके चरणोंमें सिर झुका दिया। दोनों हाथ तो रुके हुए थे, इससे वह चरणोंको नहीं पकड़ सका। तदनन्तर उसने स्वाभाविक ही शुद्ध और सरलभावसे कहा, "हे देव! तुम मुझे भवसागरके उस पार ले चलो। लो, लो, यह दूध पीओ और मुझे उपदेश देकर कृतार्थ करो।" इतना कहकर उसने दूधका बरतन और डण्डा अलग रख दिया और दोनों चरणोंमें लिपटकर कहा, "मुझे उपदेश दो, गुरुदेव, मेरा उद्धार करो, ऐसा किये बिना मैं तुम्हारे चरण नहीं छोड़ूंगा।"

सन्त एक बार तो यह सब देखकर अवाक्‌से रह गये, परन्तु गोपालका सरल भक्ति-भाव देखकर उनका हृदय दयासे भर गया। गोपालकी आंखोंसे बहती हुई आंसुओंकी दरदरित धारा उसके विशुद्ध हृदयका विश्वास दिला रही थी। सन्तने कहा—

"भाई! तू उठकर बैठ, मेरे पैर छोड़ दे, अपने घर चल, वहां किसी एकान्त पवित्र स्थानमें तुझे दीक्षा दूंगा। तेरा शरीर देखनेसे पता लगता है कि तैंने कई दिनोंसे स्नान नहीं किया है। अब तुझे स्नान करना चाहिये।" गोपाल बोला—

"महाराज! मैंने तो बस, जङ्गलमें रहकर केवल गायें चराना ही सीखा है, मुझे न तो घर-बारकी कोई चिन्ता है, न मैं कभी घर जाता हूं और न मैं स्नानादि करना ही जानता हूं। मुझे तो, तुम कृपा करके अभी, यहीं उपदेश कर दो। घरतक न जानेकी देर मुझसे सही नहीं जाती।"

प्रेममें नियमोंका बन्धन टूट जाता है, सच्चे आतुरकी अभिलाषा पूरी होनेमें कोई प्रतिबन्धक नहीं रह सकता। सन्तका हृदय उसकी प्रेमातुरताको देखकर द्रवित हो गया, उन्होंने कहा—

"भाई! मैं तुझको यहीं उपदेश करूंगा, परन्तु दीक्षा लेनेसे पहले तुझको एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी, कुछ व्रत धारण करने पड़ेंगे, बता, तू मेरे कहनेके अनुसार करेगा या नहीं?" गोपालने कहा, "नाथ! मैं ज़रूर करूंगा, परन्तु मैं गँवार हूं, मुझसे बहुतसी बातें नहीं सध सकेंगी। मुझे तो बस, कोई एक साधन बतला दो। मैं उसे तुम्हारी आज्ञानुसार प्राण-पणसे पूरा करूंगा।

गोपालके निष्कपट वचनोंसे महात्मा बहुत ही प्रसन्न हुए, और भगवान् गोविन्दका स्मरण करके वहीं बैठ गये। मानसिक आसन-शुद्धि आदिके पश्चात् उन्होंने कमण्डलुमेंसे जल लेकर गोपालके शरीरपर उसके छींटे दिये, तदनन्तर उसे मन्त्र दे दिया और बोले कि "वत्स! अबसे तुझे जो कुछ भी खाना हो सो पहले श्रीगोविन्द भगवान्‌के निवेदन करके पीछे खाना। बस, इसी एक साधनसे तुझपर भगवान्‌की कृपा हो जायगी।" गुरुदेवके वचन सुनकर गोपालने हर्षभरे हृदयसे दण्डवत् प्रणाम करते हुए कहा। "बापजी! मैं जरूर ऐसा ही करूंगा; पर मुझे तुमसे एक बात पूछनी है, तुमने जो गोविन्द भगवान्‌के भोग लगाकर खानेको कहा सो वह भगवान् कैसे हैं, कहां रहते हैं और उनका दर्शन किस तरह हो सकेगा, यह बात मुझे और बतला दो।" सन्तने कहा—

"वत्स! वह महाप्रभु घट-घटमें रम रहे हैं, यह सारा विश्व उनसे भरा है। अतएव तू उन्हें सच्चे मनसे जहां चाहेगा, वहीं दर्शन देंगे। उन भगवान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्णका रूप बड़ा ही मनोहर है, उनके शरीरका सुन्दर साँवला रंग है। दोनों नेत्र प्रफुल्लित कमल-सदृश कमनीय हैं, शरद्-पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रकी भांति उनके मुखमण्डलसे अमृतकी अनवरत वर्षा हो रही है। अहा ! एक बार उनके दर्शन होते ही सारे दुःख दूर हो जाते हैं। उनके लाल लाल बिम्बाफलसे होठ हैं, मुखपर मधुर मुरली विराज रही है, भगवान्ने पवित्र पीताम्बर धारण कर रक्खा है, कटिमें मनोहर मेखला और चरणोंमें नूपुर शोभा पा रहे हैं। जो एक बार उनकी रूप-माधुरी देख लेता है, वह फिर उन्हींका हो जाता है, उसके तन, मन, धन अपने आप ही उनके चरण-कमलोंमें समर्पित हो जाते हैं। फिर उसे न तो दूसरी चर्चा सुहाती है और न कोई दृश्य ही मन भाता है। तू कहीं भी क्यों न रहे, मन्त्रका जप करते हुए उनके इस रूपका ध्यान कर उनको पुकार लेना। ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां वह नहीं हों। बस, खाद्य पदार्थ उनके भोग लगाकर, फिर प्रसाद लेना। देख ! ऐसा करनेमें कभी भूलना नहीं ! ईश्वर-कृपासे तेरा इसीसे कल्याण हो जायगा।"

इतना कहकर गोपालका दूध ग्रहण करके महात्मा वहांसे विदा हुए, गोपालने भी आनन्दसे उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके अपनी गोशालाका रास्ता लिया।

गोपालकी घरवाली तथा उसके पुत्रोंको इस बातका कुछ भी पता नहीं है। स्त्री छाक लेकर आयी और सदाकी तरह गोपालके पास रखकर चली गयी। पर गोपाल आज कुछ दूसरे ही विचारोंमें तल्लीन है, उसका चित्त केवल प्रभुके ही चिन्तन और ध्यानमें लगा हुआ है। वह मन-ही-मन विचार करने लगा कि "गुरुदेव कह गये हैं कि भगवान् श्रीहरि घट-घटमें विराज रहे हैं, सभी समय सभी स्थानोंमें है, फिर मुझे क्यों नहीं दीखते ? गुरु महाराजके बताये हुए रूपका ध्यान तो करूं, देखें दर्शन होते हैं या नहीं। गोपाल इस विचारमें था, इसी समय उसकी स्त्री छाक रखकर चली गयी थी। थोड़ी देर बाद गोपालने देखा छाक पास रक्खी है, भोजन-सामग्री देखते ही उसे गुरुकी आज्ञाका स्मरण हो आया। गोपाल छाक उठाकर एकान्तमें ले गया। जलके छींटे देकर पत्तेपर रोटियां परोसीं, उनपर तुलसीदल रक्खा, फिर आंखें मींचकर गोविन्दका ध्यान करते हुए भोजन उनके निवेदन करने लगा। उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा—

"हे गोविन्द ! लो, लो, ये रोटियां रक्खी हैं, मेरे नाथ ! इनका भोग लगाओ। गुरुदेव आज्ञा दे गये हैं कि भगवान्के भोग लगानेपर जो प्रसादी बच रहे सो खाना, इसलिये हे प्रभो ! आओ, अपने गोपालकी साग-भाजी प्रेमसे आरोगो ! तुम नहीं आओगे तो मुझे भूखों मरना पड़ेगा। प्रभु, प्रभु ! यद्यपि आज मुझे बहुत ही भूख लगी है। तथापि तुम नहीं खाओगे तो मैं भी नहीं खाऊंगा, उपवास करूंगा। दीनानाथ, अब देर न करो, शीघ्र ही भोग लगाकर दासको कृतार्थ करो।"

देखते देखते सन्ध्या हो गयी। परन्तु न तो गोविन्द आये और न उन्होंने भोग ही लगाया। गोपालको इससे बड़ा दुःख हुआ, उसने कुछ भी नहीं खाया और रोटियोंको जंगलमें फेंककर वह अपनी गोशालामें आ गया। उसने रातको भी कुछ नहीं खाया। दूसरे दिन दुपहरको घरसे स्त्री आकर सदाकी तरह छाक रख गयी। इस दिन भी उसने एकान्तमें बैठकर गोविन्दको बुलानेकी चेष्टा की, परन्तु पहले दिनकी तरह न तो गोविन्द आये और न भोजन ही किया। गोपालको बड़ी भूख लगी थी, परन्तु उस श्रद्धालु सरल चरवाहेने अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि गुरुकी आज्ञानुसार भगवान्को भोग लगाये बिना रोटी नहीं खाऊंगा। आज भी गोपाल रोटियां जंगलमें फेंककर उपवासी रहा। दिन पर दिन बीतने लगे। आजकलका-सा जमाना होता तो ईश्वर और गुरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोनोंपर कभीकी अश्रद्धा हो गयी होती और ऐसे भक्तिभावका बहिष्कार किया जाने लगा होता। परन्तु उस समय न तो आजकलकी भांति अहम्मन्यतापूर्ण बुद्धिवादका ही युग था और न उस ग्रामीण चरवाहेके हृदयमें कुतर्कको ही जगह मिली थी। भूखके मारे प्राण छटपटाते थे परन्तु वह अपने व्रतपर प्रसन्नतासे अटल था।

इस तरह लगातार अठारह दिन बीत गये। न तो गोविन्द आते हैं और न भोजन करते हैं। इसलिये गोपाल भी भूखा रहता है। अठारह दिनोंमें उसका शरीर दिन दिन क्षीण होते होते सूख गया, पेट अन्दर घुस गया, आंखोंमें गड्ढे पड़ गये, खड़े होनेमें चक्कर आने लगे। पतिकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दुर्बलताको देखकर पत्नी उससे कारण पूछती, परन्तु वह कोई जवाब नहीं देता। वह बेचारी छाक रखकर चली जाती और उसके जानेपर गोपाल भी भगवान्‌को भोग लगानेके लिये एकान्तमें जाता; परन्तु बेचारेको रोज़ रोज़ निराश होकर लौटना पड़ता। इतना होनेपर भी गोपाल अपने व्रतपर सुदृढ़ था, वह प्रतिदिन यह विचारता कि, "अहा! इस संसारमें आकर आगे-पीछे एक दिन मरना तो है ही, फिर गुरु महाराजकी आज्ञाका उल्लङ्घन क्यों करूं? गुरु महाराजकी आज्ञा निश्चय ही सत्य है, यहां नहीं तो, मरनेके बाद गोलोकमें तो भगवान्‌के दर्शन अवश्य ही होंगे। जो कुछ भी हो, गुरुदेवकी आज्ञा कभी टालनेका नहीं हूं।" धन्य श्रद्धा!

अहा! आज गोपालके उपवासका सत्ताईसवां दिन है, अब उसमें चलने फिरनेकी शक्ति भी नहीं रह गयी है, उसकी आंखें बिल्कुल सफेद हो गयी हैं। मालूम होता है आज ही उसे इस मर्त्यलोकसे प्रयाण करना है। समय होते ही गोपालकी स्त्री छाक लेकर आयी,पतिकी दशा देखकर उसको बहुत ही दुःख हुआ, उसने पूछा "स्वामी! तुमको क्या हो गया?" परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। उसने कहा, "आज मैं घर नहीं जाकर यहीं रह जाती हूं" परन्तु गोपालने उसकी यह बात किसी तरह भी नहीं मानी। शेषमें बेचारी आँसुओंकी धारासे आँचल भिगोती हुई पतिकी आज्ञा मानकर लौट गयी। पत्नीके जाते ही गोपाल धीरे धीरे उठकर बैठा, और बड़ी कठिनतासे खड़ा होकर छाक एकान्तमें ले गया। सदाकी भांति भगवान्‌का ध्यान करके निवेदन करने लगा। आज उससे बैठा नहीं रहा गया, इससे वह जमीनमें लेटकर गोविन्दको पुकारने लगा आज उसके रुदनका अन्त नहीं है। शरीरमें जितना जल था, अश्रुबिन्दुओंके रूपमें आंखोंसे सब निकल गया और उसके शरीरमें—मनमें जितना बल था वह साराका सारा बाहर निकलकर प्रार्थनामें लग गया। गोपालके मनमें इस बातका निश्चय हो चुका था कि आजकी यह प्रार्थना, अन्तिम प्रार्थना है। इसतरह प्रार्थना करता हुआ वह बारम्बार प्रणाम करने लगा। आज श्रीहरिके दर्शनके लिये उसके मनमें अभूतपूर्व उत्कण्ठा और व्याकुलता थी। आज गोपालकी पुकार उसके अन्तःस्तलकी पूरी गहराईसे थी। अब भगवान् श्रीहरि कैसे छिपे रह सकते थे? तुरन्त ही गोपालके सामने प्रकट हो गये।

भगवान्‌का वही सुन्दर स्वरूप था, जैसा गुरुदेवने वर्णन किया था। भगवान्‌ने पावन पीताम्बर धारण कर रक्खा है,मुखमण्डलकी मनोहरता कोटि कोटि मूर्तिमान सौन्दर्यको लजा रही है, करकमलोंमें भाग्यशालिनी मुरली शोभित हो रही है। श्रीहरिकी विश्व-विमोहिनी छविको देखकर गोपाल मुग्ध हो गया, आज गोपालके आनन्दका पार नहीं है। अकस्मात् उसके शिथिल अंगोंमें जागृति आ गयी। शरीरमें एक नवीन चैतन्यताका सञ्चार हो गया। चकित होकर उसने एक बार आँखें मूँद लीं परन्तु ध्यानमें भी उसे वही रूप दिखलायी दिया जो खुली आँखोंके सामने था। उसने तुरन्त आँखें खोल लीं। बाहर भीतर दोनों जगह भगवान्‌की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप-माधुरीके दर्शनकर उसके हृदयमें आनन्दका अथाह समुद्र उमड़ पड़ा, उसकी आँखोंसे आँसुओं-की अजस्र धारा बहने लगी। वह प्रभुके चरणोंमें चिपट गया। शरीर पुलकित हो गया, गला रुक गया, जबान बन्द हो गयी। प्रेमाश्रुओंसे भगवान्‌के चरण धुल गये। भक्त-भावन भगवान्‌ने भोले भक्त-को उठाकर गोदमें ले लिया और अपने सुर-मुनि-वाञ्छित करकमलसे उसके आँसू पोंछते हुए प्रफुल्ल मुखकमलसे अमृत बरसाते हुए कहा—

"मेरे प्यारे गोपाल! तू रो मत। देख मैं तेरे प्रेमके लिये तेरी निवेदन की हुई रोटियां खाता हूं मुझे ऐसा ही अन्न चाहिये। मैं इसी प्रकारका—हृदय-के सच्चे भावसे प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ अन्न खाया करता हूं। वत्स! मैं भोजनका भूखा नहीं, तुझ सरीखे प्रेमियोंके भावका भूखा हूं। अब, घर जा, और अपने स्त्री, पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंको सुखी कर, अब तुझे कोई चिन्ता नहीं है, मेरे भजन-ध्यानमें आयु बिताकर देहान्तके बाद सुखपूर्वक गोलोकमें निवास करना।"

श्रीभगवान् इतना कहकर हँसते हँसते अन्तर्धान हो गये। गोपालके मनमें बहुत कुछ कहनेका विचार था, परन्तु उसकी जीभ रुक गयी थी। वह अबतक जिस मधुर मूर्तिकी ओर ताक रहा था, वह मूर्ति अकस्मात् जिस दिशाकी ओर अन्तर्धान हुई, वह हक्का-बक्कासा होकर उसी ओर ताकने लगा। उसकी दशा मणि-हीन सर्पकी सी हो गयी। विरह-वेदनासे वह व्याकुल होकर रो पड़ा। भगवान्‌के वियोगसे उसे बहुत ही क्लेश हुआ। शेषमें कुछ धैर्य धारण करके उसने उठकर भगवान्‌का भुक्तावशेष महाप्रसाद ग्रहण किया। उसने ज्यों ही महाप्रसाद खाना आरम्भ किया, त्यों ही उसके अन्दर आनन्द और शान्ति बढ़ने लगी। वह प्रसाद खाते खाते गुरु गोविन्दके गुण-गान करने लगा। उसके मुखसे केवल "जय गोविन्द जय गुरुदेव जय गोविन्द, जय गोविन्द" की ध्वनि होने लगी।

भोजन पूरा हुआ। सत्ताईस दिनोंकी ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरकी अनन्त क्षुधा-पिपासा सदाके लिये शान्त हो गयी। हरि-नामका आश्रय, गुरु-कृपा और गुरुवाक्यमें ऐकान्तिक श्रद्धा रखनेसे गोपाल परम कृपालु भक्त-वत्सल भगवान्‌के दुर्लभ दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हो गया। (श्रीभक्त-चरित्रके आधार पर)

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय।

सोई सफल जनम पुरुषारथ ;

जासों होय प्रीति प्रभु-पद महँ, और सरै परमारथ।
जो न दया सपने उर आनी, का फिरि भस्म रमाये ;
जो विवेक उपज्यो नहिं मन महँ, तो का जोग जगाये।
भयो काह तीरथ महँ भरमे, विषयन मन भरमाये ;
कहा भयो पण्डित ज्ञानी बनि, धन-दारा उर लाये।
सम्पति पाय बिपत्ति बढ़ाये, भोगन रोग कमाये ;
स्वारथ रत सुख काज अकारथ, जोबन रतन गँवाये।
जब लौं प्रान कण्ठ नहिं आवैं, ममता मद तन छाये ;
जमके त्रास आसु नासैं जे, "श्रीपति" ते बिसराये॥

रमाशङ्कर मिश्र 'श्रीपति'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारे कल्याणका वास्तविक मार्ग

[लेखक—श्रीरूपनारायणजी श्रीवास्तव, बी० ए०, एल-एल० बी०]

"आप आपको आप पिछानो।
कहा औरका नेक न मानो॥"

यह संसार एक विचित्र नाट्य-भवन है। इस भवनकी विचित्रता यही है कि इसमें विचरनेवाले पात्र, वास्तवमें, अपना एक ही उद्देश्य रखते हुए भी, ज्ञानवश अथवा अज्ञानवश, भिन्न भिन्न पथपर चलते हुए नज़र आते हैं। वह कौनसा उद्देश्य है जिसकी ओर सबके सब अपनी जीवन-दौड़ लगा रहे हैं। प्रत्येकके अनुभवमें यही बात आयी होगी अथवा अनुभव प्राप्त होनेपर दीखेगी कि इस भवनके प्रत्येक पात्रका उद्देश्य अपना कल्याण करना है। यदि हम अपने चारों ओर अपनी ज्ञान-दृष्टि दौड़ावें और स्वयं अपनी ओर भी देखें, तो निस्सन्देह हमें यही दीखेगा कि इस विचित्र भवनके नाट्य-पात्र, चाहे जिस रूपमें भी वे अपनी कला क्यों न दिखला रहे हों—मनुष्य-देह धारण किये अपनेको भूमण्डलका स्वामी समझ रहे हों अथवा पशु-देह ग्रहण किये मनुष्य जैसे जीवोंके लिये उपयोगी या भयोत्पादक साबित हो रहे हों; पक्षी बनकर आकाश-मण्डलमें मँड़राते हुए पृथ्वी-निवासी जीवोंका चित्त अपनी ओर आकर्षित कर रहे हों अथवा गुफाओं या कन्दराओं आदिमें छिपकर किसी भी प्रकार अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर रहे हों; कीटाणु बनकर नदी, तालाब, समुद्र आदिके गहरे पानीमें तैरते हुए स्थलचर जीवोंको चकित कर रहे हों अथवा वृक्ष-देह धारणकर लहलहाती हुई डालियों, रंग बिरंगे पत्तों, सुगन्धित फूलों और स्वादिष्ट फलोंसे अन्य जीवधारियोंके लिये उपयोगी बन रहे हों—कोई भी हों, सबके सब, यथार्थमें, अपना कल्याण ही चाहते हैं। हम मनुष्य-देह धारण किये हैं, अतएव हममेंसे प्रत्येक अपने अनुभवके आधारपर यह कह सकता है कि हमारा उद्देश्य अपना कल्याण करना है। हम जन्म लेते हैं अपने कल्याणके लिये। बालक खेलता कूदता है अपने कल्याणके लिये। स्कूल या कालेजोंमें लड़के पढ़ते हैं अपने कल्याणके लिये। युवक-युवतियां अपना शादी-व्याह करते हैं अपने कल्याणके लिये। लोग नौकरी, व्यवसाय आदि करते हैं अपने कल्याणके लिये। कृषक खेत जोतता है अपने कल्याणके लिये। दूरवर्ती देशोंसे आये हुए लोग अन्य देशोंपर राज्य करते हैं अपने कल्याणके लिये। पराधीन देशवाले स्वाधीनताके लिये युद्ध रचते हैं अपने कल्याणके लिये। यही नहीं, यदि चोर चोरी करता है, क़ातिल किसी दूसरेको क़त्ल करता है तो ये भी, अपनी समझसे अपने कल्याणके लिये ही ऐसा करते हैं। दो जातियों अथवा भिन्न भिन्न जनसमुदायोंमें युद्ध होता है तो वह भी जाति या जनसमुदाय विशेषके कल्याणके लिये ही किया जाता है। लोग कुंवा, तालाब, धर्मशाला, मन्दिर आदि बनवाते हैं अथवा अनेक परोपकार या लोकसेवा आदिके कार्य करते हैं तो ये भी ऐसा करनेसे अपना ही कल्याण चाहते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी हम करते हैं, वास्तवमें अपने ही कल्याणके लिये करते हैं। कोई भी दृढ़ताके साथ यह नहीं कह सकता कि जो कुछ वह करता है उसे वह किसी अन्य व्यक्तिके कल्याणके लिये करता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इतना होते हुए भी, यहां केवल एक ही विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या जो कुछ भी हम करते हैं उससे हमारे उद्देश्यकी पूर्ति होती है? दूसरे शब्दोंमें, प्रश्न यही है कि हमारे किये हुए कार्य हमें अपने असली मार्गकी ओर ले जाते हैं या वे हमें उद्देश्यसे हटाकर दूर फेंक रहे हैं?

इस प्रश्नका उत्तर हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदयकी आन्तरिक भावनाओंके आधारपर स्वयं दे सकता है। किसी दूसरेको इस सम्बन्धमें कहने-सुननेका अधिकार ही नहीं है। थोड़ासा भी विचार करनेपर यह दिखायी देगा कि हम भले ही ज्ञानकी उच्चसे उच्च सीमातक क्यों न पहुंच गये हों, दृढ़ताके साथ यह नहीं कह सकते कि अमुक व्यक्तिका कार्य उसे कल्याण-पथपर नहीं ले जा रहा है या उसके निर्धारित उद्देश्यसे उसे दूर फेंक रहा है। अतएव, प्रत्येकके लिये विचारार्थ प्रश्न यही रह जाता है कि वह स्वयं जो कुछ भी कर रहा है उससे उसका कल्याण होता है या नहीं? और यदि नहीं, तो यह कमी किस प्रकार पूरी की जा सकती है? यथार्थमें, "हम भले तो जगत् भला"–इसी कहावतको यथार्थ रीतिसे समझने और उसे सिद्धहस्त करनेमें ही हमारा और साथ ही सारे जगत्‌का कल्याण है। इसी एक बातके समझ लेनेमें और सभी बातें अपने आप समझमें आ सकती हैं। इस एक बातके भूले रहनेपर अन्यान्य बातोंका समझना-बूझना बेकार है। अतएव, अब हमें यह निर्धारित करना चाहिये कि हमारे कल्याणका वास्तविक मार्ग क्या है और अपने उद्देश्य तक हम किस प्रकार पहुंच सकते हैं।

हमारे कल्याणका वास्तविक मार्ग क्या है, इसी एक बातको चरितार्थ करनेके लिये संसारमें आदिकालसे लेकर आजतक कितने मत-मतान्तर स्थापित हुए, ग्रन्थ रचे गये, मन्दिर-मसज़िद, गिरजा आदि बनाये गये, तीर्थ-व्रत, जप-तप, नमाज़-प्रार्थना, पूजा-पाठ आदिकी शैलियां कायम की गयीं और न मालूम कितने कितने कार्य किये गये, जिनका यहां वर्णन करना असम्भव है। इसके अतिरिक्त, यदि शान्तिके साथ कल्याणका वास्तविक मार्ग समझमें नहीं आ सका तो सन्त-महात्मा और पीर-पैगम्बर आदि उत्पन्न हुए, बड़े बड़े युद्ध रचे गये, खूनकी नदियां बहायी गयीं और भी अनेक कार्य किये गये, जिनका वर्णन हमारी धर्म-पुस्तकों आदिमें मिलता है। इतना सब होनेपर भी यह प्रश्न हमारे लिये अब भी अपने स्थानपर ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। नित्य ही हममेंसे प्रत्येक विचारा करता है कि किस प्रकार हमारा कल्याण हो। यह प्रश्न, यथार्थमें, जितना कठिन है, उतना ही सरल भी है। हमारे अज्ञानने ही इस प्रश्नको हमारे लिये कठिन बना दिया है। वास्तविकताका ज्ञान होते ही यह प्रश्न अपने आप ही हल हो जाता है। हमारा कल्याण यथार्थमें अपने अस्तित्वको समझ लेनेमें है। अपना अस्तित्व क्या है? अपने सामने होनेवाले द्वन्द्व-युद्धको, 'मेरे-तेरे'-पनको, 'तू-मैं'के चक्रको, 'मेरी-उसकी' वासनाको मिटा देनेसे अपना अस्तित्व सामने आ जाता है और साथ ही हम संसारकी वास्तविकताको समझने लगते हैं। यथार्थमें, संसार न तो शून्यमयी है और न यह केवल स्वप्नवत् अथवा मायामय ही है। यह सत्य, सत्यस्थित और सर्वदा रहनेवाला है। इसके ताना-बानामें 'हम' हैं और हमारे ताना-बानामें यह है। संसारी माया हमें छोड़कर कहां जायगी? हम माया हैं और माया हम हैं। हम किसपर क्रोध करें, किससे ईर्षा करें, किससे घृणा करें और किसके प्रति वैरभावको मनमें स्थान दें जब कि हमारे चारों ओर केवल हम ही हैं और सब हमारे ही रूपमें विचरते हैं? जब हम अपनेको स्वप्नवत्, मायामय और असत्य नहीं समझते तो संसार भी, जो हमसे परे नहीं है क्यों स्वप्नवत् मायामय और असत्य होने चला? जब संसारका सब कुछ हमने ग्रहण कर लिया है, हमें सबका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्मरण है, सबसे अनुराग अथवा सहयोग हो चुका है, तब हम किसे त्यागें, किसे भूलें और किससे वैराग्य अथवा असहयोग करें ? यदि हमने अपना कल्याण कर लिया है तो हमारे लिये इस संसारमें कोई भी ऐसा नहीं रह जाता जिसका कल्याण होना बाकी रह गया हो। हमारा कल्याण जगत्का कल्याण है और जगत्का कल्याण हमारा कल्याण है। यथार्थमें हमारा कल्याण भी हमसे बाहर नहीं है, क्योंकि हम कल्याण हैं और कल्याण हम हैं। हमारा पथ और ध्येय सब एक है। भेद केवल ज्ञान अज्ञानका है। इसे हल कर लेनेपर सब कुछ सरल है। इसे जहांका तहां छोड़ रखनेमें सब कुछ कठिन और समझके बाहर मालूम होता है। अपने अस्तित्वकी वास्तविकता समझ लेनेमें ही हमारा और जगत्का कल्याण है। इसके अतिरिक्त हमारे कल्याणका कोई भी दूसरा वास्तविक मार्ग नहीं है। जिसे समझना हो, समझ ले और जिसे न समझना हो वह इस प्रश्नको जहांका तहां छोड़ दे, क्योंकि शायद लोग यह कहेंगेः—

"दुनियाके यह झगड़े, हरगिज़ कम न होंगे।
चर्चा यही रहेगी, अफसोस कि हम न होंगे॥"

अतृप्ति

प्रेमकी नदी कलकल-स्वर करती बह रही है। मन्द-मलय-समीर-सञ्चालित मृदुल लहरियाँ इठला-इठलाकर एक दूसरेपर गिरती हैं।

मैं नदी-कगारपर बैठा हूँ—दोनों पैर लटकाये हुए। चञ्चल लहरियाँ उचक-उचककर उन्हें छूती हैं, अस्फुट स्वरमें कुछ कहती हैं, और चटसे भग जाती हैं।

मैं समझता हूँः—यह लहरियोंका आवाहन है, वे मुझे बुला रही हैं अपने साथ जल-क्रीड़ा करनेके लिये, और मैं कूद पड़ता हूँ।

पर यह क्या ? जहां मैं कूदा, वहां बालू ही बालू हो गयी। नदी पूर्ववत् ही इठलाती, कलकल करती बह रही थी, पर मुझसे तनिक दूर।

बालकृष्ण बलदुवा।

सुधारि ले

तेरे ये कुटुम्बी अवलम्बी न रहैंगे साथी,
और न नितम्बिनी गुमानी रह जायगी।
सुन्दर स्वरूप, शक्ति, सम्पति रहैगी नाहिं,
तेरे अनुरूप न जवानी रह जायगी॥
कोऊ न लखात तोंहि तेरी आज सानीको है,
तेरी एक दिन ना निसानी रह जायगी।
मूरख ! सुधारिले करम, न मरम जानै,
तेरे करमनकी कहानी रह जायगी॥

भगवतीप्रसाद त्रिपाठी विशारद एम०ए०एल-एल०बी०

भक्तकी भावना

मुखचन्द्रकी इत चन्द्रिका है, चारु चन्द्रकसे मिली
उत इन्दु-द्युति-निन्दक, नवल, लावण्य-लतिका, शुभ खिली।
आनन युगलके योगसे, सुर-वृन्द-विस्मय-कारिणी।
वह श्याम-श्यामाकी शबल, छवि, हो मनो-मल-हारिणी।
ललित गले बनमाल, शीश शिखावल-पिच्छ शुभ।
नीरज-नयन विशाल, बसहिं श्याम उरमें सदा॥

श्रीहरि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवेक-वाटिका

आत्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महान्‌से भी महान् है। वह सबकी हृदय-गुफामें स्थित है। काम और शोकसे रहित पुरुष ही अन्तःकरणकी निर्मलतासे उस आत्माकी महिमाको देख सकता है। —उपनिषद्

* * * *

जिस प्रकार एक ही सूर्य समस्त ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण संसारको प्रकाशित करता है। —श्रीमद्भगवद्गीता

* * * *

सत्य और दयायुक्त धर्म तथा तपयुक्त विद्या भी भगवान्‌की भक्तिसे रहित मनुष्यके मनको सम्पूर्णरूपसे पवित्र नहीं कर सकते। —श्रीमद्भागवत।

* * * *

सत् और असत् वस्तुके विचारसे उत्पन्न तीव्र वैराग्य ही मुक्तिका मूल कारण बतलाया गया है। अतएव विवेक-सम्पन्न मुमुक्षु पुरुषोंको सबसे पहले वैराग्यकी प्राप्तिके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। —श्रीशंकराचार्य

* * * *

जो मनुष्य दूसरेके ऐश्वर्यको नहीं सह सकता, जिसकी बुद्धि कलुषित है, जो परधनहरण करता है, जो प्राणियोंकी हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो कठोर वचन कहता है और जिसका मन निर्मल नहीं है, उसके हृदयमें भगवान् निवास नहीं करते। —विष्णुपुराण

* * * *

चौदह बातोंका त्याग करना चाहिये। हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्य, स्वच्छन्दता, द्वेष, भय, मोह, मद्यपान, रात्रिभ्रमण, व्यसन, जुआ, कुसंगति और आलस्य। —बुद्धदेव

* * * *

सब धर्मोंका मूल दया है, परन्तु दयाके पूर्ण विकासके लिये क्षमा, नम्रता, शीलता, पवित्रता, संयम, सन्तोष, सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन दस धर्मोंका सेवन करना चाहिये। —महावीर स्वामी

* * * *

यदि मैं अपना सारा धन कंगलोंको खिला दूं तथा अपनी देह भी जलानेके लिये दे दूं पर प्रेम न रक्खूं तो कोई लाभ नहीं, प्रेममें ही धैर्य और कृपा है। प्रेम डाह नहीं करता, प्रेम अपनी न तो बड़ाई करता है और न फूलता ही है। —ईसामसीह

* * * *

भगवान्‌को प्राप्त करनेके दो ही उपाय सुने गये हैं। श्रीभगवान्‌का नाम लेना और भूखेको कुछ देना। —कबीर

* * * *

विचारशील और ब्रह्मज्ञानीको संसार नहीं लुभा सकता, मछलीके उछलनेसे समुद्र नहीं उमड़ा करता। —भर्तृहरि

* * * *

ईश्वर-प्रेमका परिचय वाणीसे नहीं मिलता, का॰ चाहिये। केवल स्तुति-प्रार्थनासे नहीं, परन्तु अनेक दुःख सहकर, सब प्रकारके स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर ही इस प्रेमका परिचय देना पड़ता है। —सेंट टेरसा।

* * * *

अन्दरके रोगकी पांच दवाइयां हैं (१)सत्संग, (२)धर्मशास्त्रका अध्ययन, (३) अल्प आहार-विहार, (४) सुबह शामकी उपासना और (५) जो कुछ करना हो सो एकाग्रताके साथ सारी शक्ति लगाकर करनेकी पद्धति। —अहमद अण्टाकी।

* * * *

अपने गुप्तसे गुप्त विचारोंको भी पवित्र रक्खो, क्योंकि उनमें भी अद्भुत शक्ति भरी है। तुम्हारे मुखसे निकलते हुए शब्दोंमें उन विचारोंके भावका पता लग जाता है और तुम्हारे भविष्यके निर्माणकर्त्ता भी वे गुप्त विचार ही होते हैं। —राल्फवाल्डो ट्राइन

* * * *

१- माता पिताकी आज्ञा पूर्णरूपसे मानो। २-सब सम्बन्धियोंसे प्रेम रक्खो। ३- अपने मुखको ज्ञान-दर्पणमें देखो, यदि सुन्दर है तो ऐसा काम मत करो जिससे उसपर धब्बा लगे और यदि कुरूप है तो सत्य, सेवा और परोपकार करके उसको सुन्दर बनाओ। ४-जो तुम्हारे साथ बुराई करे उसको तो बालूपर लिखो, और जो भलाई करे उसको पत्थरपर। —साक्रेटीज़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारे नवरात्र और श्रीदेवी-माहात्म्य

(लेखक—साहित्योपाध्याय पं० ब्रह्मदत्तजी शास्त्री काव्यतीर्थ एम० ए०, एम०ओ०एल, एम० आर० ए० एस)

(गतांकसे आगे)

द्वितीयाध्याय

इसमें देवासुर-संग्रामका वर्णन है। दानवाधिपति महिषासुरने समस्त देवगणोंको पराजित कर दिया और वह स्वयं ही इन्द्रासन पर आरूढ़ होगया। तब देवगण ब्रह्मदेवको साथ लेकर श्रीशंकर और श्रीविष्णु भगवान्‌के निकट गये और उन्हें अपना रोना सुनाया। देवताओंके तिरस्कारकी बात सुनकर श्रीमहादेवजीको महान् क्रोध हुआ और इसी प्रकार अन्य देव भी क्रोधायमान हो गये। उस देवसभामें जितने देवगण विराजमान थे उनमेंसे कोई भी ऐसा न था कि जिसे महिषासुरके औद्धत्यपर भारी क्रोध न हुआ हो।

तब श्रीशङ्कर तथा श्रीविष्णु भगवान्‌के शरीरसे तथा अन्य देवताओंके शरीरसे विचित्र तेजकी सृष्टि हुई। उस तेजने दशों दिशाओंको चारों ओरसे व्याप्त कर लिया। वह दिव्य तेज पुञ्जीभूत होकर एक अति सुन्दरी नारीके रूपमें परिणत हो गया। मानों कोई प्रभाका उत्तुङ्ग शैल हो, या निर्मल ज्योतिकी महान् राशि हो।

देवताओंने उस देवशक्तिरूपा देवीको अनेक दिव्य आभूषण दिये और अपने अपने दिव्य महाप्रभावशाली अस्त्र शस्त्रोंसे भलीभाँति सुसज्जित कर दिया। त्रिशूलधारी शङ्करने अपने त्रिशूलमेंसे निकालकर नुकीला त्रिशूल दिया, चक्रधारी दानव-भयकारी श्रीमुरारिने अपने विश्वविश्रुत सुदर्शन-चक्रमेंसे उखाड़कर एक चक्र भेट किया। वरुणदेवने शङ्ख, अग्निदेवने अपनी भस्म करनेवाली शक्ति, मरुद्गणने तापजनक चाप, तथा अक्षय तूणीर-युगल, इन्द्रदेवने अपने वज्रमेंसे तोड़कर एक अति तीक्ष्ण वज्र तथा ऐरावत गजेन्द्रसे उतारकर एक विचित्र महाभयङ्कर ध्वनिकारिणी घनघोर घण्टा युद्धस्थलीमें बजाने और दैत्योंके हृदयको हिलानेके लिये दान की। यमने अपने कालदण्ड नामक महोग्र दण्डमेंसे एक दण्ड तथा जलाधिष्ठातृ देव वरुणने सुविख्यात पुराणप्रसिद्ध वारुणपाश दिया। प्रजापतिने जयमाला तथा श्रीब्रह्मदेवजीने कमण्डलु प्रदान किया। भुवनभावन श्रीसहस्ररश्मिजीने उस देवीके प्रत्येक रोमकूपमें अपनी प्रबल ज्वाला-किरणोंका समावेश करा दिया। इसी प्रकार अन्य देवताओंने ढाल, तलवार हार वस्त्रादि देकर उस दिव्याङ्गना महाशक्तिका उत्साह बढ़ाया और आनन्दोल्लासके मारे देवगण उस महामायाके गंभीर जयनादसे अन्तरिक्षको गुंजाने लगे। उस शक्तिने भी इस प्रकार देवगणोंसे जन्म पाकर तथा उन्हींके द्वारा आभूषण तथा अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर, परमानन्द अनुभव करके ऐसी उच्च गम्भीर ध्वनि की कि सारे चराचर प्राणी विचलित हो उठे। दिगङ्गनाओंके हृदयमें धड़कन पैदा हो गयी।

इधर महिषासुर भी उस ध्वनिको सुनकर बड़े उत्साहके साथ उस शक्तिके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हुआ, असंख्य सेना साथ लिये, अगणित विश्वासपात्र अतिवीर, प्रवीर सेनापतियोंसे समन्वित होकर उसने रणाङ्गणमें प्रवेश किया और दोनों ओर भीषण रणभेरियाँ बजने लगीं। दोनों ओरसे भीषण समर संघटित हुआ। अनेक प्रकारके दिव्य और आसुर शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग और संहार विलक्षण रीतिसे होने लगा। विशेष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उल्लेखनीय पराक्रम महामायाके उस केसरीका है जो कि—

स च सिंहो महानादमुत्सृजन् धुतकेसरः ।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥

अपनी जटाओंको हिलाता और भीषण गर्जना करता हुआ राक्षसोंके प्राणोंको उनके शरीरोंसे चोंट चोंटकर ले रहा था।

इस प्रकार इस अध्यायकी यहीं समाप्ति होती है और महिषासुरके सैन्यका बध ही इस अध्याय-का विषय है।

तृतीयाध्याय

इसमें अपनी सेनाका विनाश देखकर, क्रोधमें भरकर, सबसे प्रथम महिषासुरका चिक्षुर-नामक महावीर सेनापति श्रीदेवीसे लोहा लेने आता है। वह बड़े वेगसे जगन्माताके ऊपर बाणोंकी वर्षा करता है परन्तु श्रीआदिशक्ति शीघ्रही सरलता-के साथ उसके शस्त्रास्त्रोंका प्रतिरोध कर देती हैं। उसके घोड़ोंको, रथको, तथा सारथिको क्षणभरमें छेद डालती हैं। धनुषको तोड़ देती हैं। इसपर चिक्षुर क्रोधमें भरकर ढाल तलवार लेकर युद्ध करनेके लिये दौड़ता है। परन्तु उसकी तलवार श्री-दुर्गाके भुज पर गिरकर टूट जाती है। पुनः वह राक्षस शूल लेकर दौड़ता है परन्तु देवीके शूलसे उस शूलके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं और वह नीच भी मारा जाता है।

पुनः चामर-नामक दैत्य युद्ध करनेको आता है। देवीका वाहन विकराल सिंह उस राक्षसके हाथीके मस्तकपर उछलकर झपटता है और अन्तरिक्षमें दोनोंका प्रचण्ड युद्ध होता है। चामर-के सिरको सिंह धड़से अलग कर देता है और वह निश्चेष्ट होकर धराशायी हो जाता है। इसी प्रकार महिषासुरके भेजे हुए अन्य अनेक प्रधान प्रधान दल-पति इस महासमरमें खेत रह जाते हैं। अपने पक्षका यों अपक्षय होते देखकर महिषासुर स्वयं युद्धके लिये सन्नद्ध हुआ। प्रथम वह महासुर अपने स्वाभाविक महिषरूपसे ही अखाड़ेमें उतरा और देवीके अनेक गणोंको गिराने लगा। पृथ्वीको पैने सींगोंसे खोद खोदकर उड़ाने लेगा मानों आज सारी पृथ्वीको कण कण ही कर डालेगा। बहुतोंको पूंछकी फटकारसे पछाड़ पछाड़कर भूतलपर गिराता, अनेकोंको पैरोंसे कुचलता-मसलता, असंख्य योधाओंको छातीकी धमकसे खटकाता हुआ, वह महिषासुर रणस्थलमें अभूतपूर्व पराक्रम और अतुलनीय स्फूर्ति दिखलाने लगा।

भुवम-मोहिनी देवमायाने उसे एक पाश फेंक-कर वैसेही बाँधना चाहा, जैसे बिगड़े हुए भैंसेको चतुर पुरुष बाँधते हैं। वह तत्क्षण, अपने असली रूपको छोड़कर मायाके सहारेसे, सिंह बन गया। तब माता उसे अपनी तेज़ तलवारकी धारके घाट उतारना ही चाहती थीं कि मायावी देखते ही देखते फिर एक पुरुषका रूप ग्रहणकर लगा तलवार चलाने और ढाल अड़ाने। तब देवीने उसे तीरोंसे आहत किया। किन्तु वह फौरन ही एक महाकाय गजेन्द्रका रूप धरकर युद्धमें विचरने लगा। उसने सिंहको पकड़कर ज्योंही अपनी सूंड़से खींचना चाहा, त्यों ही महामति महामायाने खड्गसे उसकी सूंड़-को काट डाला। वह पुनः महिष-रूप धारणकर दिखलायी देने लगा। तब देवीको बहुत क्रोध हुआ और उन्होंने हँसकर कहा 'गर्जनाएं कर ले जितनी कर सके। अभी मैं तुझे यमलोक पहुंचाये देती हूं।' ऐसा कहकर तलवारसे एक ही प्रहारमें उसके सिर-के दो खण्ड कर दिये। महिषासुरके मरनेपर सब देवताओं तथा असुरोंने जयध्वनियां कीं और महिषासुरके साथी बचे-खुचे दानव अपने प्राणोंको लेकर मैदानसे भाग गये।

चतुर्थाध्याय

इसमें समस्त देवताओंने मिलकर देवीजीकी स्तुति की है। वह स्तुति प्रतिदिन भक्तजनोंके पाठ करने योग्य है। स्तुति तथा नन्दनवनके पुष्पों-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा अर्चित होकर भगवती प्रसन्न हुई और उन्होंने देवताओंको वर दिया कि 'तुम लोग जब जब मुझे स्मरण करोगे, मैं तुम्हारा सङ्कट नाश करूंगी।' इस देवकृत स्तुतिमें कुछ श्लोक तो बहुत ही रोचक और सरस हैं। एक दो उद्धृत किये बिना जी नहीं मानता।

भगवती ही स्वाहा, स्वधा तथा विद्यारूपिणी है, इसी तत्त्वका वर्णन कितनी विशदताके साथ किया है, तनिक इन श्लोकोंमें देखिये:—

'यस्याः समस्तसुरताः समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयान्ति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥'

'समस्त देवता जिसके उच्चारणसे, समस्त यज्ञोंके अन्दर तृप्तिको प्राप्त होते हैं, तुम ही वह 'स्वाहा' हो। पितृगणकी तृप्तिका कारणभूत 'स्वधा' भी तुम्हारा ही एक रूप है।'

'या मुक्तिहेतुरविचिन्त्य महाव्रतात्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैः
विद्यासि का भगवती परमा हि देवी ॥

'जिसके महान् व्रतका विचार भी नहीं किया जा सकता, वह तुम इन्द्रियोंके वशीभूत करनेवाले मोक्षार्थी, समस्त दोषोंसे रहित मुनियोंसे अभ्यास की जानेवाली मुक्तिका कारणभूत 'विद्या' नामक परम तत्त्व तुम्हीं हो।'

निम्न श्लोक तो अवश्य ही प्रातः-सायं पठनीय हैं:—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः
स्वस्थैः स्मृतामतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥

पञ्चमाध्याय

शुम्भ और निशुम्भने एक बार नाक-निवासी देवताओंके नाकों दम कर दिया। कुबेर, यम, अग्नि, वरुण, पवन सभी देवताओंके अधिकार छीन लिये। देवगण चिन्तित हुए। भगवतीने वरदान दिया था कि मैं स्मरण करते ही तुम्हारी आपत्तिको दूर करूंगी। उसी वचनपर दृढ़ विश्वास रखकर नगाधिराज हिमालयपर सब देवतागण एकत्रित हुए और सच्चे भक्तिभावसे भगवतीकी स्तुति करने लगे। यह स्तुति धार्मिकजनों द्वारा प्रतिदिन की जाने योग्य हैं। दुर्गा-सप्तशतीमें भी इसका बड़ा माहात्म्य कहा गया है। इस विस्तृत स्तुतिका रहस्य यह है कि धृति, तुष्टि, पुष्टि, मति, ह्री, श्री, आदि जितनी भी उत्तमोत्तम मानव-हृदयकी भावना और सम्पत्तियां हैं, उन सभीको श्रीमहामायाका ही एकरूप बताया है। जिस समय देवगण इस प्रकार स्तुतिमें आसक्त थे, उसी समय श्रीपार्वतीजी जन्हुनन्दिनी श्रीगङ्गाजीमें स्नानार्थ पधारीं। देवताओंसे प्रश्न किया कि तुम किसकी स्तुति करते हो, इतनेहीमें पार्वतीजीके शरीररूपी कोशसे एक शिवा-नाम्नी महती देवी प्रकट हुई। शरीरकोशसे उत्पन्न होनेके कारण ही उनका नाम 'कौशिकी' हुआ। उन्होंने श्रीपार्वतीजीको उत्तर दिया कि शुम्भ तथा निशुम्भसे हारकर ये देवतागण मेरी स्तुति कर रहे हैं। जब कौशिकी देवी श्रीपार्वतीजीके शरीरसे निकल गयीं तब पार्वतीजीका वर्ण कृष्ण हो गया और उनका नाम कालिका हुआ और उन्होंने हिमाचलपर अपनी स्थिति की।
'कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।'

तब उन परमरूपवती अम्बिकाको शुम्भ-निशुम्भके सेवकोंने देखा। उन सेवकोंका नाम चण्ड तथा मुण्ड था। उन्होंने आकर अपने स्वामियोंसे कहा कि ऐसी अपूर्व सौन्दर्यशालिनी स्त्री हमने हिमाचलपर देखी है। तुम बड़े प्रतापी हो और राजा हो, तुमने अपने प्रतापसे इन्द्रादि देवताओंको परास्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर उनके ऐरावतादि गजराजोंको स्वाधीन किया है। तुम संसारकी सकल सर्वोत्तम वस्तुओंके अधिकारी हो। तुमको उस अम्बिका नामक स्त्रीको अपने घरमें रखना चाहिये। शुम्भ और निशुम्भ इस सूचनाको पाकर बड़े प्रसन्न होते हैं और अपने सेवकको आज्ञा देते हैं—'हे सुग्रीव दूत! तुम जाकर उस अम्बिकासे ऐसे ऐसे कहना और ऐसा उपाय करना कि वह प्रीतिपूर्वक शीघ्र ही हमारे पास आ जाय। सुग्रीवके पहुंचाये हुए सन्देशको सुनकर श्रीअम्बिकाजीने उत्तर दिया—

'सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम्।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः॥

'हे दूत! तुमने सत्य कहा है। इसमें मिथ्या कुछ भी नहीं कि शुम्भ तथा निशुम्भ त्रैलोक्याधिपति हैं।' किन्तु मैं क्या करूं ? मुझे कुछ ज्ञात नहीं था। मैंने मूर्खतावश यह प्रतिज्ञा कर ली है—

'यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥'

अर्थात् 'जो कोई मुझे युद्धमें हरा देगा और मेरा घमण्ड तोड़ देगा और जो कोई मेरे बराबर बली होगा, वही मेरा पति बनेगा। इसलिये जाकर अपने स्वामीसे कह दो कि शीघ्र आकर प्रतिज्ञानुसार मुझे जीतकर ले जाय।

सुग्रीवने हँसकर कहाः—

'अबले! यह बात तुम सरीखी स्त्रीके मुखसे शोभा नहीं देती! छोटा मुंह और बड़ी बात!! जिन दैत्येन्द्रोंने इन्द्रादि देवताओंके छक्के छुड़ा दिये, तुम उनका सामना किस प्रकार करोगी ? क्या एक चिड़िया कहीं बाज़का मुक़ाबिला कर सकती है ?' देवीने कहा 'कुछ भी हो, मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकती ?' सुग्रीव बेचारा अपनासा मुख लेकर चला आया। —शेष फिर

निर्जनमें

(लेखक—श्रीराम स्वामीजी महाराज)

['कल्याण'के प्रत्येक पाठकको नियमित रूपसे प्रतिदिन थोड़े समयके लिये निर्जनमें जाकर निम्नलिखित भावना एकाग्रताके साथ धारण करनी चाहिये।]

१ दिन—समग्र यथार्थ त्याग अभ्यन्तरमें है,—वह आध्यात्मिक तथा प्रच्छन्न है।

२ दिन—हृदयके गुप्त त्याग हैं। जो उनके करनेवालोंके, और जिनके लिये वे किये जाते हैं—उनके, दोनोंके लिये ही अनन्त सुखकारक होते हैं।

३ दिन—करुणा, उदारता तथा त्याग-जनित क्षुद्र कार्य-समूह सदय (मृदु-मधुर) तथा मनोहर चरित्रका निर्माण करते हैं।

४ दिन—जो क्षुद्र विषयोंको वश करता है। वही महान् विषयोंका योग्य अधिकारी बनता है।

५ दिन—शान्त, दृढ़ तथा विचारयुक्त कार्य बहुत कुछ साध सकता है।

६ दिन—इन्द्रिय-सम्बन्धी उत्तेजनासे उत्पन्न आकाङ्क्षासे परे जीवन-यापन करो, तब फिर तुम्हारा जीवन निष्फल और अनिश्चित नहीं होगा।

७ दिन—स्वयं क्रुद्ध (असन्तुष्ट, क्षुब्ध) न होना, और दूसरेको क्रोध (असन्तोष, क्षोभ) उत्पन्न न करना—ये दोनों साथ रहते हैं।

८ दिन—सबके प्रति मृदु, विचारवान्, क्षमाशील तथा वदान्य बनो।

९ दिन—पवित्र हृदयमें स्वार्थ-विचार तथा घृणाको अवकाश नहीं रहता, क्योंकि वह कोमलता तथा प्रेमसे परिपूर्ण रहता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१० दिन—प्रत्येक मनुष्यके कार्य उसके अपने प्रकाश या अन्धकारके परिमाणके अनुरूप होते हैं और कोई भी, वह जैसा है, उससे उच्चतर जीवन यापन नहीं कर सकता।

११ दिन—मनुष्य दयालुता तथा सदिच्छाका अभ्यास करें, और उसके द्वारा प्रज्ञाके सरल मूल-तत्त्वोंसे परिचित हों।

१२ दिन—ज्ञानी व्यक्ति अनर्थक वाक्य, पर-चर्चा, वृथा तर्क और आत्म-पक्ष समर्थनका परिहार करते हैं।

१३ दिन—वह धन्य है, जो अन्तिम वाक्यके लिये (स्वमत-प्राधान्यके लिये) प्रयत्नशील नहीं होता।

१४ दिन—उत्तेजनाके समय मौनावलम्बन करना चित्तोत्कर्षविशिष्ट तथा सहानुभूति-संम्पन्न (सदय) आत्माका चिह्न है।

१५ दिन—विनीत, तूष्णीम्भूत (वाक्यका यथावत् उपयोग करनेवाला) और उद्योगी मनुष्य कृतकार्य होता है;—यहाँ तक कि जब अन्यलोग उसकी शक्तियोंके सम्बन्धमें बात करते रहते हैं, उससे पहलेही वह अपने काममें लग पड़ता है।

१६ दिन—दूसरोंकी गुणागुण-परीक्षा (छिद्रान्वेषण) तथा निन्दामें अपनी शक्तियोंका अपव्यय मत करो, पूर्णतया तथा उत्तमरीतिसे अपने कर्ममें लगे रहो।

१७ दिन—जो व्यक्ति बाह्य उत्तेजना (संक्षोभ) में निवास करता है, वह बहुधा नैराश्य तथा दुःखोंमें निवास करता है।

१८ दिन—सुखमय जीवनमें स्वावलम्बन सर्वापेक्षा प्रयोजनीय है।

१९ दिन—मनुष्य तबतक यथार्थरूपसे जीवन-धारण करना आरम्भ नहीं करता, तबतक वह अपने अन्तरमें एक अचल-अटल केन्द्र नहीं पाता।

२० दिन—मनुष्योचित विचार करो। मनुष्योचित आचरण करो, मनुष्योचित जीवन-यापन करो। अपनेमें समृद्ध (धनी) बनो, अपनेमें पूर्ण बनो।

२१ दिन—तुममें एक सदसद्-विचारशक्ति है; उसका अनुसरण करो; तुममें एक मन है, उसको विशुद्ध करो; तुममें एक निर्णय-सामर्थ्य है, उसका उपयोग करो; तुममें एक इच्छा-शक्ति है, उसे दृढ़ करो।

२२ दिन—'क्या मेरा कार्य दूसरेको सन्तुष्ट करेगा ?' यह मत पूछो, किन्तु यह पूछो कि 'क्या यह कार्य न्याय्य, योग्य, यथार्थ है ?'

२३ दिन—सम्यक् उपार्जित स्वाधीनतासे उत्पन्न आनन्द, प्राज्ञोचित अधिकारसे प्रसूत शान्ति, अकृत्रिम (आत्मिक) बलमें अवस्थित सौभाग्य—इनको प्राप्त करो।

२४ दिन—कोई भी पवित्र चिन्तन, कोई भी निःस्वार्थ कर्म उसके श्रेयस्कर फलसे वञ्चित नहीं हो सकता।

२५ दिन—मौनमेंही यथार्थ बल है। किसीने ठीक कहा है—'जो कुत्ता भूँकता रहता है, वह काटता नहीं'

२६ दिन—मूर्खही वृथालाप, परचर्चा, कूटतर्क (वादानुवाद) तथा उक्ति-प्रत्युक्ति करता है।

२७ दिन—आनन्द स्वार्थपर मनुष्योंसे दूर भागता है, कलहकारियोंको परित्याग करता है, अपवित्र व्यक्तियोंसे प्रच्छन्न रहता है।

२८ दिन—कोई भी सत्य वस्तु चली नहीं जा सकती, अथवा नष्ट नहीं हो सकती। कोई भी असत्य पदार्थ रह नहीं सकता, और रक्खा नहीं जा सकता।

२९ दिन—वह मनुष्य यथार्थतः धन्य है, जो ईर्ष्या तथा द्वेषसे निर्मुक्त है।

३० दिन—सहानुभूतिही आनन्द है; यह उच्चतम, पवित्रतम कृतार्थतामें प्रकट होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्याणके नियम

१–भक्ति ज्ञान और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुंचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

२–यह प्रतिमासकी कृष्णा एकादशीको प्रकाशित होता है।

३–इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित भारतवर्षमें ४≈) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।≈) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।

४–ग्राहकोंको मनिआर्डरद्वारा चन्दा भेजना चाहिये, नहीं तो वी. पी. खर्च उनके जिम्मे और पड़ जायगा।

५–इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकार कर प्रकाशित नहीं किये जाते।

६–ग्राहकोंको अपना नाम, पता स्पष्ट लिखनेके साथ साथ ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

७ पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड अथवा टिकट भेजना आवश्यक है।

८–भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना मांगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं है।

९–कार्यालयसे 'कल्याण' दो तीन बार जांच करके प्रत्येक ग्राहकके नाम भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुंचे तो अपने डाकघरसे पूछतांछ करनी चाहिये। वहांसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कमसे कम सात दिन पहलेतक कल्याण-कार्यालयमें पहुंच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी!

१० -प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि 'व्यवस्थापक कल्याण, गोरखपुर' के नामसे भेजना चाहिये और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि 'सम्पादक कल्याण गोरखपुर' के नामसे भेजना चाहिये।

गीताप्रेसमें निम्नलिखित पुस्तकें भी मिलती हैं–

१–भगवन्नामकौमुदी–(संस्कृत) बहुत प्राचीन ग्रन्थ संस्कृत-टीकासहित .... ॥≈)

२–भक्तिरसायन–(संस्कृत) श्रीमधुसूदनजी सरस्वतीरचित संस्कृत-टीकासहित .... ।॥)

३–खण्डनखण्डखाद्यम् (हिन्दी अनुवादसहित) सजिल्द, श्रीहर्षकृत वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ २॥)

डाक महसूल सबमें अलग लगेगा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Registered No. A. 1724.

गीताप्रेस गोरखपुरमें मिलनेवाली पुस्तकें--

१-श्रीमद्भगवद्गीता-मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारणभाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्मविषय-सहित, मोटाटाइप, मजबूत कागज, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द ५७० पृष्ठ ... १)

२- ,, मोटा कागज, बढ़िया जिल्द ... ... २)

३-श्रीमद्भगवद्गीता-प्रायः सभी विषय १) वालेके समान, एक विशेषता श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ, साइज और टाइप कुछ छोटे पृष्ठ ४६८ मूल्य ॥≅) सजिल्द ॥|=)

४-गीता-साधारणभाषाटीकासहित, सचित्र ३५२ पृष्ठ =)॥ सजिल्द ... ≡)॥

५-गीता-केवलभाषा, मोटाटाइप, सचित्र मूल्य ।) सजिल्द ... ... ।=)

६-गीता-मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र मूल्य ।-) सजिल्द ... ... ।≡)

७-गीता-मूल, तावीजी साइज, सजिल्द ... ... =)

८-गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द ... ... =)

९-गीता-का सूक्ष्म विषय पाकेटसाइज -)। डिमाई आठपेजी साइज ... -)॥

१०-गीताडायरी सन् १९३० विना जिल्द ।) सजिल्द ... ... ।-)

११-पत्रपुष्प-भावमय सचित्र भजनोंकी पुस्तक ≡)॥
१२-स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी (नये संस्करणमें १० पृष्ठ बढ़े हैं) =)
१३-सच्चासुख और उसकी प्राप्तिके उपाय -)॥
१४-गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग -)॥
१५-मनुस्मृति द्वितीय अध्याय अर्थ सहित -)॥
१६-मनको वशमें करनेके उपाय, सचित्र -)।
१७-प्रेमभक्तिप्रकाश, दो रंगीन चित्र -)
१८-त्यागसे भगवत्प्राप्ति सचित्र -)
१९-ब्रह्मचर्य -)
२०-भगवान् क्या हैं ? -)
२१-समाज-सुधार -)
२२-हरेरामभजन)॥।
२३-विष्णुसहस्रनाम मूल, मोटा टाइप)॥।
२४-सीतारामभजन)॥
२५-प्रश्नोत्तरी श्रीशङ्कराचार्यजीकृत भाषा सहित)॥
२६-सन्ध्या (विधिसहित))॥
२७-बलिवैश्वदेव-विधि)॥
२८-पातञ्जलयोगदर्शन मूल)॥
२९-धर्म क्या है ?)।
३०-दिव्यसन्देश)।
३१-श्रीहरि-संकीर्तन-धुन)।
३२-गीता द्वितीय अध्याय अर्थसहित)।
३३-लोभमें ही पाप है आधापैसा
३४-गजलगीता आधापैसा
३५-भगवन्नामाङ्क, चित्र ४१ पृष्ठ ११० १)
३६-तत्त्वचिन्तामणि सचित्र ॥।-) सजिल्द १)
३७-मानवधर्म ≡)
३८-भजन-संग्रह पहिला भाग =)
३९-श्रीप्रेम श्रुतिप्रकाश (श्रुति-संग्रह) मूल -)॥
४०-श्रीप्रेम स्तुतिप्रकाश (स्तुति-संग्रह) मूल -)॥।

विशेष सुभीता

एक साथ सिरीज मंगानेवाले ग्राहकोंको डाकमहसूल नहीं देना पड़ेगा—

सि० न० १ पुस्तक न० ४ और न० ८ से लेकर ३४ तक कुल २८ पुस्तकें मूल्य १॥≡) पैकिंग -)-२)में।

सि० न० २ पुस्तक न० ३ से न० १० तक सजिल्द और न० ११ से ३५ तक कुल ३३ पुस्तकें मूल्य ४॥≠) पैकिंग =)-४॥) में। इस सिरीजमें भगवन्नामांककी कीमत १) के बदले ॥) ली गयी है।

सि० न० ३ पुस्तक न० २ मोटी सजिल्द गीता और न० ३ से ३४ तक बिना जिल्दकी कुल ३३ पुस्तकें मूल्य ५।-) पैकिंग चार्ज ≡)-५॥) में।

सि० न० ४ पुस्तक न० ३६ (सजिल्द) से ४० तक कुल ५ पुस्तकें मूल्य १॥)। पैकिंग -)॥।—१॥=) में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri